महात्मा ईसा

नाटक

नाटककार—

पाण्डेय बेचन शर्मा, 'उग्र'

ग्रन्थ-संख्या—५६

प्रकाशक तथा विक्रेता
भारती-भण्डार
लीडर प्रेस
इलाहाबाद

चतुर्थ संस्करण
सं० २००५
मूल्य २।

मुद्रक—
महादेव एन० जोशी
लीडर प्रेस, इलाहाबाद

नाटककार—श्री 'उग्र'

भूमिका

किसी नाटक की भूमिका लिखना सहज काम नहीं। यह काम उस दशा में और भी कठिन हो जाता है जब किसी निज-शिष्य-लिखित पुस्तक की भूमिका लिखनी पड़ती है। इस दशा में उसकी प्रशंसा लिखना अपनी ही प्रशंसा करना है और दोष प्रदर्शन भी, अपना ही दोष प्रदर्शन है। ऐसी अवस्था मे मै क्या लिखूँ ? कुछ समझ में नहीं आता।

यह काम मेरे लिये और अधिक कठिन हो गया है जिसका कारण है कि पुस्तक मेरे ही नाम समर्पित भी की गयी है। अतः दूषण भूषण प्रदर्शन की शैली को छोड़ मैं यहाँ केवल अपने वे भाव प्रकट करता हूँ जो मेरे हृदय में इस पुस्तक को पढ़कर उदय हुये हैं।

इस नाटक में इसकी वस्तु (plot) की मौलिकता ऐतिहासिक होने पर भी नाटकीय ढंग से सराहनीय है। ऐतिहासिक घटनाओं की सत्यता वा क्रम नाटककार को बन्धन मे नहीं डाल सकता। नाटककार स्वच्छन्द है कि वह अपने नाटक के अनुकूल पड़ने वाली घटनाओं को ले और शेष को छोड़ दे। अतः 'महात्मा ईसा' क समय की घटनाओं का क्रम यदि कुछ भंग हो गया हो, तो, नाटककार दोष-पात्र नहीं कहा जा सकता। नाटककार पर दोषारोपण

उसी दशा मे किया जाना चाहिये जब चरित्र-चित्रण मे उसे असफलता हो। मेरी समझ मे लेखक इस कठिनता को पार कर गया है। यदि कुछ कसर रह भी गयी हो, तो, यह जान कर कि लेखक का यह पहला ही उद्योग है क्षम्य माना जा सकता है।

नाटक मे विशेष खूबी घटनाओ का घात-प्रतिघात है जिससे चरित्र-चित्रण मे लेखक को अमूल्य सहायता मिलती है। यह गुण इस नाटक मे पर्याप्त मात्रा मे पाया जाता है। दूसरी खूबी नाटक मे यह होनी चाहिये कि चरित्र-चित्रण का विकास क्रमशः दिखलाया जाय। यह गुण भी इसमे पाया जाता है। तीसरी खूबी इस नाटक मे यह है कि विदेशी व्यक्ति के चरित्र को नाटककार ने ऐसे रंग मे रंग कर दिखलाया है जो न तो उस विदेशी के लिये ही अनुपयुक्त जॅचता है और न स्वदेशी ही के लिये विदेशी सा झलकता है। मेरा तात्पर्य यह है कि यदि इस नाटक को एक 'सीरिया' निवासी पढ़े तो उसे यही मालूम होगा कि इसमे हमारे ही देश के एक महात्मा का चरित्र-चित्रण है, और यदि एक भारतवासी पढ़े तो उसे भी यही मालूम होगा कि एक भारतीय महात्मा का चरित्र-चित्रण हो रहा है।

इस नाटक की विशेष खूबियों के सम्बन्ध मे मेरी यह सम्मति है कि यह नाटक ठीक ऐसा रचा गया है जो बिना किसी प्रकार का हेर फेर किये हुए ज्यों का त्यों स्टेज पर खेला जा सकता है। प्रहसन ऐसे उत्तम लगाये गये हैं जो उचित और अत्यन्त उपयोगी

तथा शिष्ट जँचते हैं। ज़रा भी भद्दापन नहीं आने पाया। मैंने और नाटकों में देखा है कि उनमें जो गाने रखे जाते हैं, वे, नितान्त कवित्व शून्य होते हैं, पर इस नाटक के गानों मे प्रायः यह दोष नहीं है।

एलाज़र का चरित्र-चित्रण बड़ी खूबी से किया गया है। उसके पेटूपन की पराकाष्ठा उस वाक्य मे कर दी गयी है जहा पर वह—'यदि सौन्दर्य भी भोजनीय होता'—कहता है। हम भी पाठकों से पूछते हैं कि—यदि सौन्दर्य भी भोजनीय होता ?—तो ?

शांति का चरित्र मुझे इतना उत्तम जँचता है जितना कि एक भारतीय सुकुलीन कुमारिका के स्वर्गीय सौन्दर्य और शिष्टाचार प्रकाशन के लिये पर्याप्त से अधिक समझा जा सकता है। पाठक उसे स्वयं पढ़कर जाँच ले।

संसार में ऐसे मनुष्यों की भी कमी नहीं रहा करती जो विश्वासघात करने में ही अपनी उन्नति समझा करते हैं। अतः ईसा और शांति के चरित्र के साथ 'यहूदा' का चरित्र-चित्रण भी उतना ही आवश्यक था जितना कि भोजन मे नमक, घोड़े के सामान में तंग, मिस्टर बनने के लिये नेकटाई और मोटर के लिये पेट्रोल। इस विषय मे भी लेखक की ओर से त्रुटि नहीं हुई।

इस नाटक की भाषा के बारे मे मेरी यह सम्मति है कि भाषा मुहावरेदार, दृश्यों के उपयुक्त, चलतू और ज़ोरदार है। बनावटीपन कहीं से भी नहीं झलकता है।

मुझे आशा है कि पाठक इस नाटक को अपनाकर लेखक का उत्साह बढ़ावेंगे। और लेखक से मुझे यह आशा है कि वे और अधिक उत्साह, सावधानी और मौलिकता से काम लेते हुए आगे बढेंगे।

काशी
दीपावली
सं० १६७६

भगवानदीन

'महात्मा ईसा' पर दो दृष्टियाँ

श्रद्धेय प्रेमचन्द जी की नजर

'महाशय उग्र' ने जब पहले मुझसे 'महात्मा ईसा' के जीवन-चरित्र पर एक नाटक लिखने का जिक्र किया तो मैं उसे देखने के लिये बहुत उत्सुक न हुआ। विषय इतना विशद, इतना गम्भीर, इतना 'ग़ैर मानूस' था कि मुझे 'उग्र' जी की सफलता के विषय में बड़ी आशंका थी। सच तो यह है कि मैं केवल मुरौवत से उसे आद्योपान्त सुनने को तैयार हुआ।

लेकिन पहले ही दृश्य ने मेरी आशंका, बहुत कुछ निवृत्त कर दी और, पहला 'एक्ट' समाप्त होते होते तो मैं उसका भक्त हो गया। भाव, भाषा, चरित्र-चित्रण, कथानक—सभी ने मुझे मुग्ध कर दिया।

हिन्दी में अच्छे 'ड्रामों' की कमी है। डी० एल० राय के नाटकों को निकाल दीजिये तो हमारे पास कुछ रह ही नहीं जाता। अब हम भी एक उच्चकोटि के मौलिक 'ड्रामा' को अन्य भाषाओं के सामने पेश कर सकते हैं। 'महात्मा ईसा' महाशय 'राय' के किसी नाटक से टक्कर ले सकता है। ऐसे मौलिक और गहन विषय पर नाटक लिख कर 'उग्र' जी ने हिन्दी का मस्तक ऊँचा कर दिया है।

(८)

महात्मा ईसा ने भारतवर्ष की यात्रा की थी। कतिपय विद्वानों की यह धारणा है। 'उग्र' जी ने इसी धारणा के आधार पर कथा की कल्पना की है।

नाटकों में सभी रसों का सम्मिश्रण होना चाहिये, विशेषतः जब वह खेलने के उद्देश्य से लिखा जाय। 'महात्मा ईसा' में आप हास्य, शान्ति, शृंगार, करुण, वीर, वीभत्सादि सब रसों का आस्वादन कर सकते हैं। गाम्भीर्य के साथ हास्य का ऐसा अपूर्व और सुंदर मेल-जोल आपको और कहीं बहुत कम मिलेगा। अन्य-देशीय-पात्रों के भाव और विचार व्यक्त करने में लेखक ने असाधारण कुशलता प्रकट की है। ऐसी सर्वाङ्ग-सुन्दर-रचना के लिये हम उन्हें हृदय से मुबारकबाद देते हैं।

श्री जन्माष्टमी
सं० १९३७

'प्रेमचन्द'

(२)

श्रद्धेय सम्पूर्णानन्दजी की नजर

मैंने 'उग्र' जी का नाटक देखा, रचना अच्छी है। हिन्दी में आज कल जैसे नाटक देख पड़ते हैं उनमें से बहुतों से अच्छी है। चरित्र-चित्रण भी अच्छा है। 'शान्ति' का चित्र बहुत अच्छा दिखलाया गया है।

मेरी समझ में यदि लेखक महोदय ने इतिहास पर अधिक ध्यान दिया होता तो और अच्छा होता। 'मेरी मैग्डलीन' का चरित्र 'शान्ति' से भी अच्छा खींचा जा सकता था। ईसा धार्मिक सुधारक थे। उनको राजनीतिक-सुधारक बनाना धर्म, इतिहास और ईसा के साथ अन्याय करना है। यदि ऐसा करना ही था तो यह बात भी लानी चाहिये थी कि उन दिनों यहूदियों पर विदेशी राज कर रहे थे।

श्री जालिपादेवी, काशी
१६ ८-२२

सम्पूर्णानन्द

लेखक का वक्तव्य

मेरे हृदय मे एक आग सुलग रही थी, उसे ही मैंने इस नाटक के रूप में फूँक दिया है। चतुर पढ़ने वाले मेरी इस बात को इस पुस्तक में एकदम सच पायेंगे। उक्त अग्नि की ज्वाल-माला में जब इतिहास जल गया तब मैं मुस्करा पड़ा, जब भाषा का भव्य-कलेवर झुलस गया तब मै आनन्द से हँस पड़ा और, जब ऐसे अनेक दोष मेरे सामने आये, जिनसे नाट्यकारों को बचना चाहिये, तब मैं खिलखिला पड़ा! क्यों? आप जानते हैं? केवल इसीलिये कि लोग इतनी चीजों के नष्ट हो जाने पर भी मेरे हृदय की आग देख सकेंगे? बस, इतना ही बहुत है।

'महात्मा ईसा' चाहे नाटक न हुआ हो, पर, वह एक चित्र अवश्य बन गया है। कहाँ का? आप जानते है?

'नाट्यकार' पद प्राप्त करने के लिये लोगों को साहित्य-कानन में अनेक अब्दों तक तपस्या करनी पड़ती है। पर यहाँ तो न जाने कब से समझ रक्खा है कि—

होइहि भजन न तामस देहा
मन, क्रम, बचन मन्त्र दृढ़ एहा।

अस्तु, मैं—अभी अपने को नाट्यकार कह कर उस परम-पवित्र-पद का अपमान नहीं करना चाहता। पाठक इसका ध्यान रक्खें।

मैं श्रद्धेय प्रेमचंदजी तथा श्रद्धेय बाबू सम्पूर्णानन्दजी का, छपने के पहले ही मेरी पुस्तक देख लेने और अपनी मूल्यवान सम्मति देने के कारण, अत्यन्त ऋणी हूँ।

उत्साह वर्द्धन के लिये बन्धु श्रीचन्द्रशेखर पाण्डेय तथा दास सहायक रहने के लिये मित्र श्रीविश्वनाथ सिंह शर्मा 'विशारद' और श्री रामनाथ लालजी सुमन 'साहित्य-भूषण' श्रादि का भी मैं आभारी हूँ।

१६-६-२२
कबीर चौरा, काशी

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'

द्वितीय संस्करण—

बहुतों की राय में 'महात्मा ईसा' सी रचनाएँ मुझे लिखनी चाहिये थी। मगर १६ बरसों बाद इस पुस्तक का दूसरा संस्करण अब होने जा रहा है! मैं समझता हूँ 'ईसा' सी रचनाओं में मैं भूखों मर जाता।

भावुक पाठक सोचेंगे—पेट तो साहित्य नहीं। हाँ, लेकिन सारा साहित्य होता है पेट ही में! और अर्वाचीन हिन्दी साहित्यिक-गति पीछे है—पेट के!

१-५-३८
कबीर चौरा, काशी

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'

लाला भगवानदीन

समर्पण

जो नाता, वशिष्ठ का राम से, बृहस्पति का पाक-शासन से, शुक्र का बलि से तथा द्रोण का पार्थ से था, या जो नाता पण्डित अयोध्यासिंहजी उपाध्याय का पण्डित रामचरित उपाध्याय से तथा पण्डित महावीर प्रसादजी द्विवेदी का बाबू मैथिलीशरण गुप्त से है, उसी नाते के पवित्र-सूत्र से 'दीन' ने मुझे भी अपने चरणों में बाँध लिया है। अस्तु......।

मेरे प्रयत्न-वृक्ष का प्रथम फल 'महात्मा ईसा' उन्हीं 'दीन' जी के कर-कमलों में सादर समर्पित हुआ।

'दीन' का
'उग्र'

महात्मा ईसा

नाटक

प्रथम अंक

मंगलाचरण

राष्ट्रीय-गान

(पाँच ऋषिकुमार गाते हैं)

स्वाधीन

स्वाधीन हमारी माता है—स्वाधीन !

खर-त्रिशूल, करवाल-युक्त कर,

देख शत्रु का मद जाता झर !

निज वश कर, पशुता-हर है वह विकट-सिंह आसीन !

आसीन

आसीन हमारी माता है—स्वाधीन ।

महात्मा ईसा

उसका विकट-ललाट प्रभा मय,

देख दुष्ट-खल-दल खाते भय!

हिम-गिरि वज्र-मुकुट शोभित है जिस पर अति-प्राचीन!

प्राचीन

प्राचीन हमारी माता है—स्वाधीन!

जलधि-भ्रमर-चुम्बित सरोज-पद,

सतत प्रकृति सेवित विहीन मद!

जल-निर्मल-युत, फल-युत, कल-युत सब प्रकार दुखहीन!

दुखहीन

दुखहीन हमारी माता है—स्वाधीन!

विद्या-मय, गुण-मय, नय मय युत,

कर्म-वीर, निर्भय, विवेक युत!

जिसकी शुचि सन्तान श्रेष्ठ संसार और तल्लीन!

तल्लीन

तल्लीन हमारी माता है—स्वाधीन!

प्रथम दृश्य

स्थान—पुण्यपुरी काशी की एक सड़क। समय—दोपहर

(ब्रह्मचारी संन्यासी के वेष में ईसा का प्रवेश)

ईसा—श्रीविश्वनाथ की पवित्र पुरी काशी यही है? न जाने सन्तोष चन्द्र कहाँ भटक गया। (कुछ सोचकर) पर, जैसा मैंने सुन रखा है उन लक्षणों से तो यही काशी हो सकती है। इतने देव-मन्दिर और इतने शिवभक्त मैंने और कहीं नहीं देखे हैं। कोई मिले तो पूछूँ..

(एक नागरिक का प्रवेश)

ईसा—क्यों भाई! इस नगर का नाम क्या है?

नाग०—(आश्चर्य चकित) क्या आप परदेशी हैं?

ईसा—नहीं तो पूछता ही क्यों? मैं राजगृही से आ रहा हूँ।

नाग०—और जाइयेगा कहाँ?

ईसा—पुण्यपुरी काशी..

नाग०—ठीक। तो भैया, श्रीकाशीपुरी में ही इस समय आप खड़े हैं। इस समय इतनी विभूति भारत के अन्य किसी भी नगर में नहीं है। स्वरूप से तो आप कोई ब्रह्मचारी विद्यार्थी जान पड़ते हैं...

ईसा—जी हाँ। मैं राजगृही के ब्रह्मचर्याश्रम से आ रहा हूँ। और यहाँ पर अब अपनी अन्तिम शिक्षा प्राप्त करूँगा।

नाग०—क्या वहाँ से आप अकेले ही आ रहे हैं?

ईसा—नहीं महोदय, मेरे साथ मेरा गुरुभाई भी था। आज प्रातःकाल मार्ग में यकायक वह न जाने कहाँ छूट गया! (आँसू भरकर) हाय! बेचारा कहीं भटकता होगा!

नाग०—शिव! शिव! आप लोगों को बड़ा कष्ट हुआ। अच्छा अब कोई चिन्ता की बात नहीं, श्रीविश्वनाथ जी की कृपा से सब अच्छा ही होगा। कृपया मेरे साथ चल कर आप मेरी पर्ण-कुटीर को पवित्र कीजिये, मेरा आतिथ्य ग्रहण कीजिये। मैं आपके गुरु-भाई की खोज का भी प्रबन्ध करता हूँ—आइये!

ईसा—आर्य, आप धन्य हैं और धन्य है आपकी सभ्यता! इतनी उदारता, इतनी सहृदयता!

नाग०—तो चलिए!...

ईसा—(अनसुनी करके) क्या पृथ्वी के अन्य किसी भाग में ऐसे मनुष्य मिल सकते हैं? कदापि नहीं। यहाँ का एक-एक प्राणी देवता है—हरेक स्थान स्वर्ग!

नाग०—(हाथ जोड़ कर) चलिये देवता!

ईसा—(नम्रता से) क्षमा कीजिये महोदय! मुझे आज अपने गुरुदेव के आश्रम पर पहुँचना अत्यावश्यक है। आप कृपा कर मुझे

श्रीविवेकाचार्यजी के आश्रम का मार्ग बता दीजिये। इस कृपा
लिये मै आपका चिर-ऋणी रहूँगा।

नाग०—(विस्मय से) आचार्य विवेक मुनि के आप
हैं ? भला उन्हे कौन नही जानता ? वह तो विश्व-विख्यात
महापुरुष है। आप इसी मार्ग से सीधे चले जाइये, उनकी
और पाठशाला नगर के दक्षिण भाग मे नदी के तट पर हैं। मै
आपको आश्रम तक पहुँचा देता परन्तु इस समय मुझे एक
अत्यावश्यक कार्य से घर पर जाना है। मेरी इच्छा तो यह है कि
आप भी मेरे साथ ही चलिये और कुछ विश्राम कर लीजिये फिर
हम साथ ही आश्रम चलेगे।

ईसा—नही, अब मुझे आज्ञा दीजिये (जाना चाहता है)

नाग०—सुनिये तो! आपने कभी विश्वनाथजी के दर्शन
किये हैं ?

ईसा—मैं तो अभी प्रथम बार काशी मे आ रहा हूँ, दर्शन
कहाँ से किये हूँ। अब करूँगा।

नाग०—अच्छा तो यहाँ से थोड़ी ही दूर पर भगवान् कामारि
का मन्दिर है। आप इस मार्ग से (अँगुली दिखाकर) चले जाइये,
क्षण भर बाद ही आपको धवल-जला भगवती-जन्हुजा के दर्शन
होगे। स्नान और श्रीविश्वम्भर-अन्नपूर्णा के दर्शन करके तब
आश्रम जाइयेगा।

ईसा—बहुत अच्छा। मैं ऐसा ही करूँगा।

(सन्तोषचन्द्र का प्रवेश)

सन्तोष—ईश ! तुम यहाँ हो ! ओह ! मैं तुम्हारे लिये और व व्यग्र था !

ईसा—(सन्तोषचन्द्र के गले में हाथ डालकर) तुम कहाँ रह गये ? ऐसे भी कोई साथ छोड़ता है ? देखो तो—आते ही, मैंने अपने लिए एक सहृदय सहायक और मित्र ढूढ़ लिया। (नागरिक की ओर संकेत करके) आप बड़े ही सज्जन हैं सन्तोष !

सन्तोष—ईश ! यह आर्य-भूमि सज्जनता, उदारता और मित्रता की जननी है। यहाँ के लोग अतिथियों को देवताओं से भी श्रेष्ठतर जानते है। अभी तुम्हारे पश्चिम देश की दूषित-वायु का संचार इधर नहीं हुआ है।

ईसा—(उदास मुख) ठीक कहते हो सन्तोष ! हमारे देश की वायु बड़ी ही दूषित है। हाय ! बड़ी ही दूषित ! चलो। (नागरिक से) आपको बड़ा कष्ट हुआ—क्षमा कीजियेगा। अब आज्ञा दीजिये।

नाग०—अच्छा जाइये, मुझे भी शीघ्रता है, नमस्कार !

ईसा और सन्तोष—नमस्कार !

(एक ओर से नागरिक तथा दूसरी ओर से ईसा और संन्तोषचन्द्र का प्रस्थान)

द्वितीय दृश्य

स्थान—विवेकाचार्य की पाठशाला । समय—प्रभात

(कुछ विद्यार्थी बैठ कर आपस में वाद-विवाद कर रहे हैं)

एक विद्यार्थी—क्यों जी कुशाग्रबुद्धि ! रावण के कितने मुख थे ?

कुशा०—(हँसकर) ह ह ह ह ! इतना भी नहीं जानते ! अरे भाई उसका तो नाम ही दश-मुख था । इतना भी नहीं जानते ? उपेन्द्र ! इतना भी नहीं...

उपेन्द्र—ज़रा शीघ्रता से उत्तर देते चलिये पौराणिकाचार्यजी ! तब—उसके हाथ कितने थे ?

कुशा०—इसीलिये—ह ह ह ह !—इसीलिये मैंने तर्कशास्त्र का अध्ययन नहीं किया । मेरे पितामह ने मरते समय मुझे खूब समझा कर कह दिया था कि "बेटा, चाहे घास छीलना परन्तु तार्किक न होना । तर्क से बुद्धि पतली अर्थात् क्षीण हो जाती है..."—भला कहीं क्षीण बुद्धि से संसार का काम चलता है ? यहाँ के लिये तो मोटी—खूब मोटी—बुद्धि चाहिये । ठीक है न कौशिक !

कौशिक—आपकी बात और ठीक ? हाँ उपेन्द्रजी के प्रश्न का उत्तर दीजिये ।

कुशा०—इतना भी नहीं जानते—ह ह ! मालूम होता है, तुम भी वैसे ही हो गये । अच्छा सुनो ! सब बतलाये देता हूँ । रावण के दश मुख, दश नाक, दश शिखा, बीस नेत्र, बीस कान, बीस बाहु, एक पेट और दो पैर थे । इतना भी नहीं जानते ! (हँसता है) धर्म प्रिय ! इतना भी...

धर्म०—भोजन तो वह दश मुखों से करता रहा होगा ?

कौशिक—तब क्या एक मुख से ?

उपेन्द्र—तब तो रावण का वीर होना असम्भव हो जायगा ।

धर्म—सो कैसे ?

उपेन्द्र—यह तो नितान्त स्पष्ट समस्या है । हमारे पौराणिक जी के एक मुख है और एक ही पेट—सो मुख से पाँचगुना पेट बड़ा है । इसी-प्रकार यदि रावण के दश मुख थे, तो उसके पेट का व्यास मुखों के व्यास से कम-से-कम पाँचगुना बड़ा रहा होगा ।

कौशिक—अर्थात् उसके मुखों का व्यास पाँच योजन रहा होगा तो पेट का पचीस योजन* ! बापरे, बाप ! सौ कोस लम्बा-चौड़ा पेट !

उपेन्द्र—अब आपही कहिये धर्मप्रियजी ! इतना बड़ा पेट पालने वाला कोई वीर हो सकता है ? बोलिये न कुशाग्रबुद्धिजी !

कुशा०—(आवेश से) अरे ए ए ए ए—कुछ जानते भी हो !

---

* एक योजन चार कोस का होता है ।

उसे भगवान् शंकर का वरदान था—वरदान! इतना भी नहीं जानते...

उपेन्द्र—अच्छा हम मान लेते हैं कि वह भगवान् सदा-शिव के वरदान से वीर हो गया था। अब आप यह बतलाइये कि वह भोजन कैसे करता था? क्या उसके बीसो हाथ एक बराबर लम्बे थे?

कुशा०—और नहीं तो क्या? भला किसी के हाथ भी छोटे-बड़े होते हैं! हा हा हा हा!—इतना भी नहीं जानते!...

धर्म०—तो उसके दशो दाहिने तथा दशों बायें हाथ एक दूसरे के ऊपर रहे होंगे?

उपेन्द्र—यही तो कठिनता है।

कौशिक—क्या?

उपेन्द्र—देखिये, उसके दश मुख थे। एक मुख बीच में, चार चार दाहिने-बायें और एक ऊपर।

कुशा०—ठीक कहते हो—अब ठीक कहते हो।

उपेन्द्र—अच्छा, मान लीजिये, रावण, भोजन करने बैठा है। बड़े भारी थाल में हज़ारों मन पकवान परोसे गये हैं। उसने दाहिने हाथों में से पहले हाथ से पचास लड्डू एक साथ लेकर ऊपरवाले मुख में डालना आरम्भ किया। अब जो दूसरे हाथ में मालपूआ लेकर, आतुरता से, बीचवाले मुख में डालने चला तो क्या देखता

है कि उसके पहलेवाले हाथ की कलाई ने शिलारूप धारण करके गुफारूपी मुख का द्वार बन्द कर दिया है! पण्डितराज रावण के उस मुख की जिह्वा मालपूआ लेने के लिए भूखी बाघिन की तरह टूटती है पर कलाई का पसीना चाट कर ही उसे लौटना पड़ता है। हाय! अभागा रावण!

कौशिक—तब तो भाई शेष आठ हाथों का भी काम बन्द हो जाता रहा होगा? चार-पाँच हाथ तो बायें ओर के मुखों की सेवा में पहुँच भी न सकते रहे होंगे?

कुशा०—(खीझकर) चुप रहो! तुम कुछ भी नहीं जानते। जिसके सहस्रों दासी दास थे वह केवल हाथों के कारण भोजन न करता रहा होगा!—मूर्ख हो... .इतना भी नहीं जानते!

धर्म०—अच्छा, यह तो हमने मान लिया। रावण को नौकर-चाकर खिला देते रहे होंगे। अब बतलाइये वह सोता कैसे रहा होगा? करवट लेने पर उसके चार मुख नीचे दब जाते रहे होंगे—जिनमें से अन्तिम मुख के ऊपर दश मुखों का बोझ रहता होगा! और चार मुख तरपर रक्खे हुए चार गट्ठरों की तरह ऊपर उठ जाते रहे होंगे! नीचेवाले मुखों और गर्दन के बीच में एक हाथी के आने-जाने लायक मार्ग हो जाता रहा होगा। ऐसी अवस्था में भला उसे निद्रा आती होगी? असम्भव!

सब—(हँसते हैं) हा हा हा हा......!

कुशा०—(बिगड़कर) अच्छा! अब तुम लोग चुप रहो। मुझे अपनी पुस्तक पढ़ने दो, नहीं तो, गुरुजी से कह दूँगा। हुँः! इतना भी नहीं जानते।

सब—(हँसते हैं) हा हा हा हा.... .!

(ईसा के साथ विवेकाचार्य का प्रवेश। सब दण्डवत प्रणाम करते हैं)

विवे०—क्या है कुशाग्रबुद्धि! आज सब लोग इतना खिल-खिला क्यों रहे हो?

कुशा०—(मुँह बनाकर) मैं नहीं हूँ गुरुजी! यही हैं उपेन्द्र। इन्हें दिन रात हँसी ही सूझती है। मैं अपना पाठ निकालूँ?

विवे०—नहीं कुश! आज तुम लोगों की पढ़ायी न हो सकेगी। हमें एक दूसरा आवश्यक कार्य करना है। तुम लोग जा सकते हो।

(चारो प्रणाम करके जाते हैं)

विवे०—ईश! यह समाचार तुमने किससे सुना?

ईसा०—भगवन्! कुछ बौद्ध भिक्षु मेरी जन्मभूमि की ओर प्रचारार्थ गये हुए थे—वे ही, जब मैं राजगृही से यहाँ आ रहा था तब मार्ग में मिले थे। उन्हीं से मुझे यह समाचार मिला है।

विवे०—(गम्भीर होकर) शीघ्रता की कोई आवश्यकता नहीं है। हेरोद का अत्याचार बढ़ता है—तो बढ़ने दो! घड़ा भर जाने पर ही जल्द टूटेगा।

ईसा—परन्तु....

विवे०—नहीं—ईश। 'परन्तु' की चिन्ता छोड़ो। इस समय तुम्हारी अवस्था बीस वर्ष की है। अभी तुम्हें पाँच वर्ष और पुण्य भूमि में रहना पड़ेगा। आज से तुम भगवद्गीता और बुद्धचरित का अध्ययन आरम्भ करो। स्वदेश का उद्धार करने के लिये तुम्हें कर्मयोग का अभ्यास करना पड़ेगा—कर्मयोगी बनना पड़ेगा। आओ! शुभस्य शीघ्रम्।

(दोनों का प्रस्थान)

तृतीय दृश्य

स्थान—विवेकाचार्य की कुटी के सामने—उद्यान। समय—संध्या

(शान्ति गाती है)

गीत

प्रियतम छवि लखि वारी गयी मैं ..

बारी गयी मैं बलिहारी गयी मैं।

आयो अनुपम पथिक, श्रवण सुनि

दरसन विकल अटारी गयी मैं,

रूप-सुधा-रस अमर पान कर,

हाय! अचानक मारी गयी मैं!

चकित, चन्द्र चितवन चकोर ज्यों,

त्यों प्रिय बदन निहारी गयी मैं!

(शान्ति की सखी करुणा का प्रवेश)

करुणा—रुकी क्यों बहन?—गाओ! मैं भी गाऊँगी।

शान्ति—तुम अपना वह गाना गाओ, करुणा!

करुणा—नहीं, नहीं। मैं जो तुम गाती थीं वही गाऊँगी।

(गाती है)

प्रियतम छबि लखि वारी गयी मै

शान्ति—(करुणा का मुँह बन्द करके) चुप—चुप ! को ई सुनेगा तो क्या कहेगा ?

करुणा—(गाती जाती है) वारी गयी मैं बलिहारी गयी मैं...इसके बाद क्या है बहिन !—बता दो हाथ जोड़ती हूँ ।

शान्ति—(बात उड़ाने के विचार से) अच्छा...एक बात बताओ तो मैं तुम्हें गाना बता दूँ ।

करुणा—(प्रसन्न होकर) पूछो ! (गुन गुनाती जाती है)

प्रियतम छवि लखि वारी गयी मैं...अहा !—पूछो !

शान्ति—(जरा बिगड कर) फिर तू गाने लगी —जा ! अब कुछ न पूछूँगी !

करुणा—(शान्ति के गले में हाथ डाल कर) रूठ गयीं बहिन ! अच्छा अब न गाऊँगी । पूछो, क्या पूछती हो ?—(फिर गाती है)

वारी गयी मैं—बलि—(चूक कर दाँतों से जीभ काटती है)

शान्ति (हँसकर) करुणा ! यदि तुझे चन्द्रमा मिल जाय तो तू क्या करे ?

करुणा—बस यही पूछना था ! इसमें कौन सी बड़ी बात है । बाबा कहते थे—चन्द्रमा के पास अमृत होता है । मिलने पर मैं उससे वही छीन लूँगी और तुम्हें पिला दूँगी । लो—मैंने तुम्हारे प्रश्न का उत्तर दे दिया । अब मुझे गाना बताओ ।

शान्ति—मुझे अमृत क्यों पिलायेगी पगली ?

करुणा—इसलिये कि तुम बहुत दिनों तक जीती और मुझे अच्छी-अच्छी मिठाइयाँ खिलाती रहो।—अब बताओ गाना !

शान्ति—एक बात और बता तो गाना बताऊँ।

करुणा—(बिगड़ कर) यह नहीं हो सकता ! अब पहले तुम गाना बताओ !

शान्ति—नहीं, एक बात और—

करुणा—(रूठ कर) जाने दो ! अब मैं तुम्हारा गाना नहीं सुनना चाहती। वही गाती हूँ जो बाबा ने बताया है। देखो, अब तुम मेरा गाना मत गाना। (गाती है)

ज्ञानी, बलवान, सरल देश है हमारा

शान्ति—(चिढ़ाती गाती है) ज्ञानी, बलवान, सरल..

करुणा—नहीं मानोगी ! अच्छा लो, मेरे साथी लोग आ रहे हैं। हम सब मिल कर गायेंगे—तुम न गाना !

(चार-पाँच ऋषिकुमारों का प्रवेश)

एक ऋषि कु०—यहाँ क्या करती हो करुणा ? चलो गुरुजी बुलाते हैं।

करुणा—वह कहाँ है माधव ?

माधव—अभी ईशा भैया के साथ संध्योपासन करके आये हैं। देवालय में बैठे हैं। हमें भजन गाने को बुलाया है।

करुणा—हम लोग यहीं से गाते चलें।

(सब गाते हैं)

गीत

ज्ञानी, बलवान, सरल,
देश है हमारा ..!
गंगा, जमुना, हिमगिरि,
सिन्धु से संवारा ..!
गुञ्जित इसके आँगन,
वेद खेद-हारी ..!
विश्वनाथ से सनाथ,
विश्व का सितारा ..!

(शान्ति को छोड़ सब का प्रस्थान)

शान्ति—अब न जानें क्यों उन्हें बार-बार देखने की इच्छा होती है, परन्तु सम्मुख होने पर देखा नहीं जाता! चार-पाँच वर्ष पहले भी मैंने उन्हें राजगृही के आश्रम में देखा था—उस समय तो उनमें इतना आकर्षण नहीं था। अब मैं उन्हें इतना क्यों चाहती हूँ? (चिन्तित) कुछ समझ में नहीं आता। माधव कह गया है कि देवालय मे पिताजी के साथ बैठे हैं—चलूँ? नहीं—न जाऊँ। न क्यों जाऊँ? वह तो देवालय है। देवता के दर्शन कर चली आऊँगी। उनकी ओर न देखूँगी—पर, न कैसे देखूँगी? और, यदि पिताजी ने बैठने को कहा? अच्छा, देखा जायगा—

(प्रस्थान)

चतुर्थ दृश्य

स्थान—बैतुलहम मे जोज़ेफ का घर। समय—तीसरा पहर

(मरियम बैठी सोच रही है)

मरि०—मेरा बच्चा, मेरा लाल कितना सुन्दर था! उसे देखने से मेरी आँखो मे ज्योति आती थी, हृदय मे बल आता था। जान पड़ता था मानो मै सुख के समुद्र मे—अपार समुद्र मे—अपनी जीवन-नौका डाल कर विहार कर रही थी। (कुछ सोच कर और लम्बी साँस लेकर) हाय! किसने मेरी तरी को तट पर खींच लिया? (नेत्रो मे जल भर कर) ईसा के लिये—अपनी कोख के धन ईसा के लिये—मुझे क्या-क्या नही सहना पड़ा? उसके गर्भ मे आते ही संसार "कलंकिनी" पुकार कर मेरी ओर उँगली उठाने लगा! उसके जन्म लेते ही, इसी हेरोद के पिता के डर से मुझे मिस्र देश मे भाग जाना पड़ा। उस दुष्ट के मरने पर यहाँ आकर हमने क्या देखा कि साँप का बेटा और भी अधिक विषैला है! इस डाकू की भी तीव्र दृष्टि मेरे ही लाल पर लगी—हाय!

(जोज़ेफ़ का प्रवेश)

जोज़ेफ—प्यारी. !

मरि०—(न सुन कर) बल दो। मेरे स्वर्गीय पिता। मेरी आत्मा मे बल दो! मुझे परीक्षा मे मत डालो! मेरा लाल—

जोजेफ—मरियम।

मरि०—कौन? तुम हो! मेरे नाथ! बताओ! मेरे लाल को कहाँ छिपा दिया है? बताओ! (रोती है...)

जोजेफ—मरियम! बलिदान चाहिये—बलिदान! हमारी जन्म-भूमि—तुम्हारे देश को बलिदान चाहिये।

मरि०—यह सिर लो नाथ! इसके टुकड़े-टुकड़े कर माता के चरणों पर चढ़ा दो! उफ भी न करूँगी। पर—मेरे लाल को दिखा दो—ओह! आज पूरे बारह वर्ष हो गये।

जोजेफ—सौदा इतना सस्ता नही है प्यारी जो हमारे या तुम्हारे रक्त के मूल्य पर मिल जाय। धर्म-पिता योहन ने भविष्यद्-वाणी की है...

मरि०—(उत्सुकता से) क्या कहा है?

जोजेफ—यही कि जब तक स्वदेश की बलि-वेदी पर ईसा के रक्त का चौका न लगाया जायगा, तब तक उद्धार असम्भव है!

मरि०—असम्भव है? मेरे सर्वस्व की बलि? असम्भव है! ईसा का रक्त...क्या कहते हो? नः! यह नहीं होने का।

जोजेफ—मरियम! प्यारी—

मरि०—धर्मपिता! यह तुमने क्या कह दिया? यदि तुम भी किसी की माता होते —

जोज़ेफ—मरियम ! देखो अपने नेत्रो के जल से मेरे धैर्य्य को बहा मत दो—तुम क्या समझती हो ईसा तुम्हारा पुत्र है ?

मरि०—पुत्र नहीं तो क्या है नाथ ?

जोज़ेफ—भूल कर भी ऐसा न सोचना। वह एक सुन्दर गुलाब है जिसे खिलने तक संसार के क्रूर करो से बचाने के लिये परमात्मा ने हम कण्टको के आश्रय मे छोड़ दिया है। वह ज्योही खिल जायगा—परमपिता के चरणो पर अर्पण कर दिया जायगा। उसने विश्वास कर इतनी बड़ी थाती हमे सौप दी है यही हमारा बड़ा भाग्य है।

मरि०—यह तुम क्या कहते हो नाथ ?

जोज़ेफ—जो कहता हूँ, बिलकुल ठीक कहता हूँ। उसकी इच्छा पूरी होकर ही रहेगी। फिर हम 'बीच की कीच' बन कर व्यर्थ माथे पर कलंक का टीका क्यो लगायें ? इस यज्ञ मे बाधा न डालना मरियम !

मरि०—प्यारे, ज़रा...

जोज़ेफ—ख़ूब सोच लो ! यह कर्तव्य की पुकार है, जन्म-भूमि की पुकार है। इसका अपमान नहीं किया जा सकता। इसके सम्मुख सिर झुकाना ही पड़ेगा (ठहर कर) ईसा को हमने, धर्म-पिता की आज्ञानुसार आर्य-भूमि भारतवर्ष मे भेज दिया है। बारह वर्ष बीत गये—वह वहाँ पर इसी यज्ञ मे वलिदान दिये जाने के लिए शुद्ध किया जा रहा है। मेरा पुत्र स्वदेश पर

बलिदान चढ़ने के लिए तैयार हो रहा है। कैसा गौरवमय संवाद है मरियम! जरा सोचो तो! (जाता है)

मरि०—(ठंडी साँस लेकर) परमात्मा! तुमने माता का हृदय इतना कोमल इतना करुणापूर्ण, और इतना प्रेममय क्यों बनाया ?

पंचम दृश्य

स्थान—एक पहाड़ की तराई। समय—दोपहर

(एलाज़र और उसका मित्र डेविड)

एला०—डेविड! यदि धर्म-पुस्तक का लेखक मैं होता.

डेविड—(बीच ही में)...तो उसमें आप अपनी प्रशंसाओं के पुल बाँध देते?

एला०—अजी नहीं! यदि धर्म-पुस्तक का लेखक मैं होता ..

डेविड—. तो उसके आरम्भ में ही अपने स्थूल शरीर का एक सुन्दर चित्र अवश्य दे देते! है न यही बात?

एला०—अँ हँ—इतनी शीघ्रता क्यों करते हो—भाई मेरे! इतनी छोटी-छोटी बातों के लिये एलाज़र धर्म-पुस्तक में परिवर्तन नहीं करता। मेरा उद्देश्य बहुत ऊँचा है। वह तुम्हारी समझ से बहुत ऊपर है डेविड! यदि धर्म-पुस्तक का लेखक मैं होता .

डेविड—तो उसके आरम्भ में ही इतना अवश्य लिखते कि—"धन्य है वे जिनका क़द नाटा, पेट लम्बा, रंग काला और नाक चपटी हो क्योंकि स्वर्ग का राज्य उन्हीं के लिये है" समझ गया न?

एला०—(बिगड़ कर) चुप रहो ! मेरी बात सुनते ही नहीं, अपनी ही हाँके चले जाते हो—जाओ, अब न कहूँगा।

डेविड—(मुँह बना कर) अच्छा कहिये ! अब न बोलूँगा। पर कहिये शीघ्रता से ! आपको देर लगाते देख कर मुझसे बिना बोले रहा नहीं जाता।

एला०—(एक साँस में) यदि धर्म-पुस्तक का लेखक मैं होता तो उसमे भोजन की उत्तमोत्तम सामग्रियो की नामावली देने से कदापि न चूकता और विश्राम दिन रविवार को उपवास करने की चर्चा भूल से भी न करता। (अन्तिम वाक्य कहते-कहते उसका स्वर मन्द पड़ जाता है, दम फूलने लगता है) आह ! तुमने कितना कष्ट दिया डेविड !

डेविड—तब आप एक साँस में क्यों बक गये। मैंने ठीक से सुना भी नहीं। वह कौन आता है ?

(गुप्तचर का प्रवेश)

एला०—(डर कर) अरे ! यह कोई प्रेत तो......प्रेत है प्रेत ! डेविड...! भागो ! उसी कबरिस्तान (समाधि-स्थल) से आता है ?

डेविड—अजी—प्रेत नहीं, यह तो कोई राज-कर्मचारी जान पड़ता है।

एला०—(व्यग्र होकर) चुप रहो—डेविड ! प्रेत है। मैं इससे दुआ माँग लेता हूँ। तुम भी प्रार्थना करो ! (आँख मूँद कर दुआ

आँगता है)—"ऐ शैतानों के बादशाह ! मैं तेरी मिन्नत करता हूँ—तू मुझे बख्श दे ! यहाँ से जाते ही मैं तेरे स्थान पर भेड़ी का दूध और मछली भेजूँगा—मुझे मुआफ कर।"

दूत—बन्दगी जनाब !

एला०—(आँखें मूँदे) गया—डेविड ! गया ?

डेविड—(हँसकर) जरा आँखें तो खोलिये ! मैंने पहले ही कह दिया कि प्रेत नहीं है...

एला०—(आँखें खोल कर दूत से अपना डर छिपाने की चेष्टा करता है) आह ! तुम हो—महारानी हेरोदिया के यहाँ से आ रहे हो ? बैठो भाई ! अभी मैं प्रार्थना कर रहा था...

डेविड—किससे प्रार्थना कर रहे थे ?

एला०—(आँखें दिखाता है) जरा चुप भी रहो ! (दूत से) क्या समाचार लाये हो ?

दूत—आपके नाम महारानी का एक पत्र है...(पत्र देता है)

एला०—(पत्र पढ़ कर) अच्छा तुम चलो, थोड़ी देर में मैं स्वत महारानी की सेवा में उपस्थित होऊँगा।

दूत—जो आज्ञा। (नमन कर प्रस्थान)

एला०—धर्म मंदिर में विलास भवन...कोई बुरी बात तो नहीं है डेविड ! जिसने धर्म की सृष्टि की है विलास भी तो उसी की पवित्र रचना है—है न डेविड ?

डेविड—आपकी बातें मेरी समझ में नहीं आयीं। क्या अभी तक आपको प्रेत-भय लगा ही है ?

एला०—(पत्र दिखा कर) इसे देखो! सब समझ में आ जायगा।

डेविड—(पत्र पढ़ कर) इस हेरोदिया को भी एक चुड़ैल ही समझो एलाज़र! इसके फेर में न पड़ना। देखते हो कैसा प्रलोभन दिया है।

एला०—मैं कहता हूँ इसमें हानि ही क्या है ? वह चुड़ैल हो या चुड़ैल की दादी हमें तो महंत का पद दिला देगी। तुम जानते नहीं कैसर हेरोद उसकी कृपा-दृष्टि का दास है।

डेविड—हूँ . परन्तु एलाज़र! युरोशलीम के धर्म-मंदिर को हेरोदिया का विलास-भवन बनाकर महन्त तो बन जाओगे पर कुछ उधर (आकाश की ओर इशारा करके) की भी चिन्ता है ?

एला०—हूँ! यह सब ढकोसला है। अरे बाबा! स्वादिष्ट भोजन के सम्मुख बड़े-बड़े देव-मुनी मस्तक झुका देते हैं। जहाँ एक दिन एक जोड़े कबूतर का बलिदान दिया वहाँ हमारा "स्वर्गीयपिता" हम पर प्रसन्न हो जायगा।—इसमें क्या धरा है ?

डेविड—परन्तु—

एला०—कुछ नहीं। आती हुई लक्ष्मी का अपमान करना ही अधर्म है। क्या तुम कह सकते हो कि यह जो कुछ होगा उस

परम पिता की इच्छा के विरुद्ध होगा ? असम्भव । यह उसी की इच्छा है । वह चाहता है कि उसकी सन्तान (अपनी ओर इशारा) उत्तमोत्तम भोजन करे—जिसे देख कर पिता को प्रसन्नता हो । चलो ! आज महारानी हेरोदिया से तुम्हारा भी परिचय करा दूँ । आओ !

(दोनों का प्रस्थान)

षष्ठम दृश्य

स्थान—युरोशलीम की सड़क । समय—प्रभात

(धर्म पिता योहन खड़े विचार कर रहे हैं)

योहन—हेरोदिया ने यहाँ के धर्म-मंदिर को अपना विलास-भवन बनाया है । अब परम पिता की पवित्र वेदी के सामने प्रार्थनास्थान पर वेश्याओं का नाच होगा । यह पाप की पराकाष्ठा और नीचता की चरम सीमा । इस समय कैसर हेरोद अधिकार-मद से अंधा हो गया है । वह हेरोदिया—अपने भाई की विधवा पत्नी हेरोदिया को कुत्सित-दृष्टि से देखता है । इधर हेरोदिया की जवानी की नदी बाढ़ पर है । फिर कौन किसकी सुनता है । वह मर्यादा के कूलद्रुमों को तोड़ती हुई समुद्र की खोज में भटक रही है । भला कहीं ऐसी क्षुद्र नदियाँ समुद्र तक पहुँचती हैं ? युवकों के हृदय-सरो को ही वह समुद्र समझती हैं और अपने गन्दे जल से उसे लबालब भर देती हैं ! हेरोदिया को सन्तोष नहीं । हो कैसे ? उसका समुद्र तो था उसका पति जिसे परमात्मा ने उसी के पापों के प्रायश्चित के लिए सुखा दिया ! तिसपर भी अभागिनी पश्चात्ताप नहीं करती ! प्रज्वलित अग्नि को बुझाने के लिए पुआल का सहायता लेती है । हाय अभागिनी स्त्री ! तू नहीं जानती कि तुझे

कितना कठिन दंड दिया जायगा! (कुछ ठहरकर) अब मेरा क्या कर्तव्य है? इस समय मैं इस देश का धर्म-पिता बनाया गया हूँ। यदि हेरोदिया के विषय में जनता को सतर्क नहीं करूँगा तो मुझे स्वर्गीय पिता के सम्मुख जवाब देना पड़ेगा। फिर मैं अपने कर्तव्य से क्यों डिगूँ? क्या कहते हो हृदय? इसमें प्राण भय है? होने दो! कर्तव्य के सम्मुख प्राण भय का उतना ही मूल्य है जितना मोतियों के सम्मुख घास के ढेर का। योहन—कर्तव्य-पालन करेगा।

(कुछ नागरिकों का प्रवेश)

योहन—(उनको अपने पास बुलाकर) जरा सुनो भाई!

१ नाग०—(विस्मय से) यह कौन है बाबा?

२ नाग०—कोई जंगली आदमी जान पड़ता है।—चलो देखा जाय—डर क्या है?

३ नाग०—नहीं जी, क्या तुम्हारी आँखों पर पर्दा पड़ गया है? पहचानते नहीं! यह तो धर्म-पिता योहन है। (दौड़ कर सब पैरों पर गिरते हैं)

योहन—पुत्रो! सतर्क रहो! पुआल के ढेरों के बीच में एक चिनगारी उत्पन्न हो गयी है जो देखते ही देखते भीषण अग्नि का रूप धारण कर लेगी—सावधान!

१ नाग०—(हाथ जोड़कर) पिता! समझ में नहीं आता आप क्या कह रहे हैं?

योहन—सावधान हो जाओ नागरिको! इस पापिनी हेरो-दिया से सावधान हो जाओ। नहीं तो सब का नाश सन्निकट है। जाओ! जो मिले सब को सुना दो यही योहन मंत्रदाता (बपतिस्मा देनेवाले)! की भविष्यद्वाणी है।

सब—जो आज्ञा प्रभो (प्रस्थान—दूसरा दल आता है)

योहन—(बुलाकर) यहाँ आओ भाई!

सब—कौन? धर्म-पिता! प्रणाम स्वीकार हो। (सिर झुकाते हैं)

योहन—सावधान हो जाओ! नहीं तो हेरोदिया के पीछे तमाम युरोशलीम का नाश हो जायगा। उससे दूर रहो! वह पापिनी है—तुम सबको ले डूबेगी!

(शावेल का सैनिक वेश में प्रवेश)

शावेल—(सब से) यह कैसी भीड़ है जी!

योहन—तुम भी सुनो भाई! हेरोदिया से सावधान रहना—वह सर्पिणी न जाने कब किसको डस ले।

शावेल—तुम कौन हो जी! जो हमारी महारानी के विरुद्ध ऐसे अपशब्दों का व्यवहार कर रहे हो? क्या तुम्हें अपने प्राणों की चिन्ता नहीं है?

योहन—युवक! मुझे अपने प्राणों से अधिक तुम्हारे प्राणों की चिन्ता है। मैं अपना कर्तव्य पालन कर रहा हूँ। तुम तो कोई राजकर्मचारी जान पड़ते हो। देखो, नेत्रों के रहते हुए भी अन्धे न बनो! हेरोदिया से सावधान रहो युवक!

शावेल—(क्रोध से) बुड्ढे ! राज-महिषी का अपमान न कर ! नहीं तो देखता है ! (तलवार दिखलाता है) इसी के घाट उतार दिया जायगा !

(शावेल को क्रुद्ध देख भय से नागरिकों का भागना)

योहन—(गभीरता से) तलवार किसे दिखाता है मूर्ख ! तेरी तलवार हम वनवासियों का कुछ भी नहीं बिगाड़ सकती । जा ! सबसे कह कि—हेरोदिया युरोशलीम का सर्वनाश करना चाहती है ।

शावेल—फिर वही बात ? (गर्दनियाँ देता है) निकल नगर के बाहर !

(स्टिफेन का प्रवेश)

स्टिफेन—खबरदार शावेल ! हाथ न उठाना ! नहीं तो तेरा भला न होगा । नारकी । अधम !!

शावेल—(योहन को छोड़कर स्टिफेन से) तू कौन होता है इस बीच में कूदने वाला ? हट जा सामने से ! नहीं तो (तलवार निकाल-कर) अभी ज़मीन सूँघने लगेगा ।

स्टिफेन—शावेल ! तेरी इतनी हिम्मत कि तू तमाम यहूदियों के धर्म-पिता पर हाथ उठाये—क्षमा माँग मूर्ख ! नहीं आसमान फट पड़ेगा और तेरे ऊपर वज्रपात होगा !

शावेल—(भयभीत भावेन) यह क्या—आप !—धर्म-पिता योहन ! पिता !!! (घुटने टेककर हाथ जोड़ता है)

योहन—नाटक करने की कोई आवश्यकता नहीं। जा! अपना कर्तव्य पालन कर। आओ बेटा! गली-गली में हम अपना सन्देश सुनायें।

(योहन और स्टिफ़ेन का प्रस्थान)

शावेल—(क्रोध से) योहन! तुम धर्म-पिता हो तो क्या?—शावेल तुम्हारी पर्वाह नहीं करता। उसे तो तुमने मन्त्र नहीं दिया है? वह तुमसे अपने इस अपमान का भरपूर बदला लेगा—ज़रूर लेगा।

(सावेश प्रस्थान)

सप्तम दृश्य

स्थान—विवेकाचार्य की पाठशाला। समय—तीसरा पहर

(विवेकाचार्य और ईसा)

विवे०—सबसे पहले "त्याग" का अभ्यास करना पड़ेगा—ईश!

ईसा—वह त्याग कैसा होगा प्रभो ?

विवे०—आकाश की तरह अनन्त, हिमालय की तरह दृढ़ और भागीरथी के जल की तरह स्वच्छ। शिव की तरह पूज्य, कल्पवृक्ष की तरह उदार और सौंदर्य की तरह दर्शनीय—उस त्याग का वर्णन नहीं हो सकता है।

ईसा—फिर क्या करना होगा ? गुरुदेव !

विवे०—त्याग मंत्र का जप करते ही तुम्हें सेवा-मार्ग के दर्शन होंगे। वह मार्ग समुद्र की तरह विस्तीर्ण, वज्र की तरह कठिन और स्वर्ग लोक की तरह स्वयं-प्रकाशित है। उस पथ के पथिक 'देवता' नाम से पुकारे जाते हैं।

ईसा—किस प्रकार चलने से इस मार्ग मे सफलता मिलती है प्रभो !

विवे०—अपने और पराये का भेद भूल जाने से, छोटे और बड़े का विचार छोड़ देने से और संसार-भर को अपना कुटुम्ब मान लेने से। ईसा! सेवा मुक्ति की बड़ी बहन है। सेवकों की मुक्ति वैसे ही निश्चित है जैसे जन्म लेने वालों की मृत्यु। वे मनुष्य धन्य हैं जो दूसरों की सेवा करने में अपना अहोभाग्य समझते हैं।

ईसा—गुरुदेव!

विवे०—अच्छी तरह से समझ लो! यही एक मार्ग है जिस पर चलने से तुम अपने अभीष्ट-स्थान पर पहुँच सकोगे। यही एक औषधि है जिसके प्रयोग से तुम अपने देश का रोग दूर कर सकोगे। ईश! इसके लिए तुम्हें भूधर की तरह अचल होना पड़ेगा! दृढ़ता ही इस मार्ग का सम्बल है। बस! यही मेरा अन्तिम उपदेश है। वह देखो! दिन भर अविराम परिश्रम करके भगवान भास्कर ने एक भाव से—छोटे-बड़े तथा अच्छे-बुरे का विचार छोड़ कर—सब की सेवा की है! अब वह क्षण भर के लिए विश्राम करने जा रहे हैं। उनके स्वागत के लिए मंगल-वस्त्र पहन कर पश्चिमादिग्वधू खड़ी है। चलूं—ऐसे महापुरुष के चरणों को मंदाकिनी के जल से धोकर मैं भी अपना जन्म सफल कर लूं। तुम्हारे दूसरे सहपाठी तुम से मिलने के लिए आए होंगे, उनसे मिलकर तब सन्ध्योपासन के लिए गंगातट पर आना—मैं वहीं रहूँगा।

(प्रस्थान)

ईसा—त्याग और सेवा! यही हमारे गुरुमंत्र है। यही हमारे आराध्य देव है और यही हमारी उद्देश्य नौका के कर्णधार हैं। यह मार्ग कितना पवित्र, दयामय और अद्वितीय है। आर्य हृदय! तुम धन्य हो, जिसे कि इस मार्ग के उद्‌गम होने का गर्व है।

(कुशाग्रबुद्धि, उपेन्द्र, कौशिक और धर्मप्रिय आदि का प्रवेश)

उपेन्द्र—(ईसा को दिखाकर कुशाग्रबुद्धि से) हम जो कहते हैं कुशाग्रबुद्धि, मान जाओ! अपनी बात खाली मत कराओ! ईश भाई नहीं रुक सकते।

कुशा०—नही क्यो रुकेंगे? भला कोई भला आदमी किसी का निमन्त्रण अस्वीकार करता है? यह अवश्य अपनी यात्रा स्थगित कर देंगे।

कौशिक—व्यर्थ ही झगड़ने से लाभ क्या होगा? अब हम लोग इन्हीं से पूछ लें। (ईसा से) क्यों भाई साहब, क्या आप हमारे पौराणिकाचार्य पण्डित कुशाग्रबुद्धि जी का निमन्त्रण स्वीकार न कीजिएगा?

ईसा—(प्रसन्नता से) स्वीकार क्यों न करूँगा?—धन्य भाग्य! कहो भाई कुश! आपका निमन्त्रण कब होगा?

कुशा०—(उपेन्द्र से) अब बोलो! मैंने कहा था न कि यात्रा स्थगित करा के रहूँगा—हूँ ऊँ ऊँ ऊँ ऊँ—इतना भी नहीं जानते!

ईसा—बतलाइये महाशय! आपका निमन्त्रण कब है? आज रात्रि में या कल प्रातः?

धर्म०—बोलिए न पण्डित जी !

कुशा०—निमन्त्रण ? आज कौन तिथि है—वैशाख कृष्ण चतुर्दशी—चैत्र शुक्ल नवमी (गिनता है) ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण, भाद्र, आश्विन, कार्तिक, पौष, माघ, फाल्गुन, चैत्र—ग्यारह महीने ! पूरे ग्यारह महीने हैं—समझ गये, पूरे ग्यारह !

सब—(हँसते हैं) ह. .ह ह ह !

कुशा०—(बिगड़ कर) तुम लोग हँसते क्यों हो जी ? क्या तुम्हें ज्योतिष पर विश्वास नहीं है। देखो यह रेखा। (हाथ दिखाता है।) जिसके हाथ में यह होती है, वह ३० वर्ष की अवस्था में बड़ा भारी भूपति होता है। इस समय मेरी अवस्था उनतीस वर्ष और दो महीने की है। अस्तु फाल्गुन तक मुझे राजा हो ही जाना होगा ? बस—चैत्र की रामनवमी पर निमन्त्रण ! इसमें कौन सी बाँकी बात है जो तुम लोग हँसते हो ? (ईसा से) हाँ भैया, उसी दिन कृपया आप इस (अपनी ओर इशारा) दरिद्र ब्राह्मण की कुटिया पर पधारियेगा।

उपेन्द्र—हे कुशाग्रबुद्धि जी ! आपही की बात सच हो।

कुशा०—इसका क्या अर्थ ?

उपेन्द्र—यही कि उस दिन भी आप एक "दरिद्र ब्राह्मण" ही रहें।

कौशिक०—अरे भाई ! तब निमन्त्रण कैसे देंगे और एक दरिद्र ब्राह्मण खिलायेगा क्या ?

धर्म०—वही—स-लवण सत्वान्न ।

ईसा०—अच्छा भाई, यह समस्या फिर हल कर ली जायगी। इस समय चलिये सन्ध्योपासन कर आयें। गुरुदेव जी गंगातट पर हमारी प्रतीक्षा करते होंगे।

(सब का प्रस्थान)

अष्टम दृश्य

स्थान—उद्यान । समय—प्रभात ।

(शान्ति एक माला गूंथती और गाती)

गीत

आसावरी

प्रम की माला हो ससार...!

सुमन समान सु-मन शोभित हों

बँधे एकता-तार ।

त्रिभुवन देख मुग्ध हो मन-मन

परिमल पावन प्यार,

कलह-कु-वास-कठिन का छन में

हो जाये संहार !

अखिल भुवन-पति खिल-खिल-खिलकर

सजें गले का हार !

दरशन ही से 'मरु'-मन में रे

बरसे सुधा-सुधार !

(ईसा का प्रवेश)

इसा—शान्ति !

शान्ति—(सकपकाती) कौन ? तुम ईशा ! आओ !

ईसा—तुम्हारा गान कितना मधुर है, शान्ति! सुनने वाले की हृत्तंत्रियाँ बज उठती हैं और धमनियों में सोमरस की सी मादकता भर जाती है।

शान्ति—ईश!—

ईसा—शान्ति! मुझे देखकर तुमने अपना गाना बंद क्यों कर दिया! देखती हो तुम्हारे पाले हुए मृग शावक मेरी ओर कैसी क्रोध-पूर्ण दृष्टि से देख रहे हैं। मानो मैंने उनका कोई सुख छीन लिया है। आम की डाल पर बैठी हुई मौन कोकिल मुझे देखते ही बोल उठी—मानो कहती है—इस समय चले जाओ। मेरे आनन्द के बाधक न बनो! मयूर जो अभी तक तुम्हारे गान पर मुग्ध होकर नाच रहे थे, अब अपने सहस्र-नील-चन्द्रांकित-पक्ष को समेट कर उदास खड़े हैं। इस समय यहाँ पर आकर मैंने बहुतों को कष्ट दिया—शान्ति! यह माला तुम किसके लिए गूँथती हो?

शान्ति—देवता के लिए, ईश!

ईसा—तुम्हारे देवता कौन हैं? क्या मुझे बताओगी!

शान्ति—तुम्हीं बताओ! देखूँ जानते हो कि नहीं?

ईसा—बताने को तो मैं बताऊँ—परन्तु यदि मेरी धारणा असत्य सिद्ध हुई तो?

शान्ति—तब क्या होगा?

ईसा—तुम्हें यह माला मेरे बताये हुए देव ही को अर्पण करनी होगी। बोलो है स्वीकार?

शान्ति—(कुछ सोचकर) अच्छा—बताओ ! मुझे स्वीकार है ।

ईसा—आज से दस वर्ष पहिले की एक घटना मुझे ज्यों की त्यों याद है शान्ति ! तब तुम केवल पाँच वर्षों की थीं । एक दिन राजगृही के उद्यान में, कदम्ब वृक्ष के नीचे, एक युवक बैठ कर माला गूँथकर तुम्हें प्रसन्न कर रहा था । उस समय आकाश में पूर्ण-चन्द्र तुम्हारी बाल-सुलभ-चपलता को देखकर हँस रहा था और निशा सुन्दरी निस्तब्ध होकर तुम्हारी और उस युवक की बातें सुन रही थी । कुछ याद आती है ?

शान्ति—(सोचती) कहते चलो ! मैं सोच रही हूँ...

ईसा—धीरे धीरे माला तैयार हो गयी और तुमने उसे उस युवक के हाथ से लेकर कहा "—तुम मेरे देवता बनो ! मैं तुम्हारी पूजा करूँ ।" युवक के लाख मना करने पर भी तुमने उसे वह माला पहना ही दी । क्यों ! तुम्हें उस देवता की याद आयी या नहीं ?

शान्ति—(लजाकर) वह—वह देवता तो तुम्हीं हो ईशा !

ईसा—(मुस्कराकर) अब बताओ ! यह माला किसे दोगी ?

शान्ति—अपने देवता को—तुम्हें ! यह लो ! (माला पहना देती है)

ईसा—शान्ति ! अब माला पहनाने के बाद के कर्म को भी पूरा कर डालो !

शान्ति—वह कर्म क्या है ईशा ?

ईसा—सजल नेत्रों से विदा देना...!

शान्ति—क्यों—तुम कहाँ जाओगे ?

ईसा—मेरी जन्म-भूमि से आदमी आया है। पिताजी ने मुझे बहुत ही शीघ्र बुलाया है—शान्ति !

शान्ति—ईश !

ईसा—मुझे भूलोगी तो नहीं ?

शान्ति—यदि ऐसा कर सकती तो—आज मैं भी तुमसे विदा माँग लेती ईश ! यदि ऐसा कर सकती—असम्भव !

ईसा—शान्ति ! इस समय मैं कर्तव्य के भार से दबा हूँ नहीं तुमसे विदा माँगना मेरे लिये भी "असम्भव" ही होता। ऋणी मनुष्य को विना ऋण-परिशोध किये सुख-विला[illegible]त होने का कोई अधिकार नहीं है। मुझ पर मेरी जन्मभू[illegible] बड़ा ऋण है। उसे भरने के लिए स्वदेश जाना ही [illegible] सफलता मिली तो मुझे अपने सन्निकट पाओगी [illegible] तो . बस !

(सतेज गम[illegible]

शान्ति—(एक ठंडी साँस लेकर) परमात्मन् ! तुमने स्त्री जा[illegible] को रच कर "अबला" क्यों कर दिया ? [illegible]होती तो इस विदा से क्यों डरती ?

नवम् दृश्य

स्थान—राजप्रासाद । समय—सायंकाल

(हेरोद खड़ा सोच रहा है)

हेरो०—हेरोदिया इस समय वसंत ऋतु की पुष्पित वाटिका की तरह सुन्दरी है और शारदी पुष्करिणी की तरह कूल-काम-तरंगमयी है । ऐसे अवसर को हाथ से जाने देना नितांत मूर्खता होगी । ओह ! उसके रूप की मादकता देख मदिरा का रंग उड़ जाता है ! उसके ओठों की लालिमा देखकर बालारुण—अपनी अनोखी उषा को भी भूल जाता है, और, भरसक शीघ्रता से हेरोदिया के भवन-शिखर पर दर्शनार्थ पहुँचता है ! ऐसी सुन्दरी का केवल लोकापवाद के भय से त्याग करना कदापि उचित नहीं मैं इस समय यहूदिया का सम्राट हूँ—कर्ता-भर्ता और हर्ता । (कोई क्या बिगाड़ लेगा ? हँ हँ ! मूर्ख कहते हैं कि छोटे ाई की स्त्री पर दृष्टि डालना पाप है । राजा के लिए कोई भी र्म पाप नहीं । राजा पाप और पुण्य का नियन्ता है । जैसे र की सभी वस्तुओं का भोक्ता मनुष्य है—क्योंकि परमात्मा पूरा सबका सम्राट बनाया है—उसी प्रकार मनुष्यों का सम्राट शी प्रजा के भाग्य का भोग स्वेच्छया कर सकता है ।

(हेरोदिया का प्रवेश)

हेरोदिया—सम्राट !

हेरो०—अच्छे अवसर पर आई । सुन्दरी ! तुम्हे बिना देखे मुझसे रहा नहीं जाता—प्रिये !

हेरोदिया—प्यारे !

हेरो०—वह देखो ! आकाश मे घने, काले, बादल एकत्र हो कर गरज रहे हैं। मानो इस बात की घोषणा कर रहे हैं कि अकेले रहने वाला डराया जायगा ! प्यारी ! मुझे भला ये क्या डरा सकते हैं (पास जाकर) जब कि तुम पास हो !

हेरोदिया—प्यारे, आओ ! आज तुम्हे मै शराब पिलाऊँ—बोलो ! पीओगे ?

हेरो०—तुम्हारे हाथो का ढाला विष का प्याला भी पीने मे हेरोद न झिझकेगा—ढालो प्यारी ! ढालो !

(हेरोदिया शराब ढालकर प्याला देती है। हेरोद पीता है)

हेरोदिया—प्यारे ! तुम कितने अच्छे—कितने सुन्दर हो !

हेरो०—बहुत सुन्दर हूँ—हेरोदिया सचमुच मै बहुत सुन्दर हूँ—ढालो !!

हेरोदिया—प्यारे ! आज मेरीना रोती थी। (शराब देती है)

हेरो०—क्यो रोती थी !—शराब के लिये ? उसे भी एक प्याला ढाल देती—ढालो ! प्यारी !!

हेरोदिया—(शराब देकर) वह तुमसे कुछ माँगती थी—प्यारे !

हेरो०—मुझसे ? उसने तो कुछ भी नहीं माँगा—कुछ—कुछ भी नहीं।—ढालो ! हेरोदिया !!

हेरोदिया—प्यारे !

हेरो०—तुम्हारी आँखें बड़ी सुन्दर—निहायत नशीली हैं और तुम .ढालो !

हेरोदिया—वह देखो ! मेरीना आती है प्यारे ! अभी मैं जाती हूँ। तुम उससे पूछ लो वह क्या चाहती है ? तब तक मैं आती हूँ। : (प्रस्थान, मेरीना का प्रवेश)

हेरो०—ढालो ! ढालती चलो !! हेरोदिया—प्यारी !

मेरीना—बाबा !

हेरो०—कौ ....न मेरीना ! बेटी...ढालो !!

मेरीना—बाबा ! गाना सुनोगे ? मैं गाऊँ ?

हेरो०—गा ..बेटी ..गा...मैं...ज़रूर...दूँगा...गा कोई बढ़िया गाना......गा !

मेरीना—(गाती है)

गज़ल

रूप पाया है वहाँ से तो लुटा देना यहाँ,
संग दिल हो न दिलेतंग बना देना यहाँ !
कण्ठ में स्वर जो चुरा लाये हो वीणा का भला...
देख उत्कण्ठितों को आप सुना देना यहाँ

आँख में तुमने भरे दल जो है जलजों के सजल ..
भौंर से, मित्र जो मिल जायँ दिखा देना यहाँ !
हमको मालूम है लाये हो सुधा ओठों में—
क्या करोगे उसे ? प्यासों को पिला देना यहाँ !

हेरो०—खूब ! खूब ! (गाता है) "रूप पाया है वहाँ से तो" मेरीना ! माँग—क्या माँगती है ? शराब ?

मेरी०—जो माँगूँगी दोगे बाबा ?

हेरो०—क्यों न दूँगा—तू मेरी प्यारी . . . हेरोदिया की .. बेटी है क्यों न दूँगा . माँग !

मेरीना—दोगे—बाबा ? नहीं . नहीं . न दोगे !!

हेरो०—विश्वास नहीं करती लड़की ? शपथ करूँ ? अच्छा ले शराब की शपथ ! इस प्याले की शपथ हेरोदिया की शपथ .. तेरे शिर की शपथ ! और शपथ चाहिये ? माँग.. बेटी । क्या माँगती है—माँग ?

मेरीना—अच्छा तो बाबा ! कल धर्मपिता योहन का सिर मुझे मँगा दीजिए—

हेरो०—(चौंककर) क्या कहा ? मेरीना—क्या कहा ? धर्म-पिता का सिर क्या कहा ??

मेरीना—तो क्या न दोगे ? अच्छा न दो जाती हूँ मैं ! माँ से कह देती हूँ ..न दो । (रोती है)

हेरो०—माँ से कहेगी ! क्यों ? मैं दूँगा मेरीना ! मैं दूँगा—क्या लेगी योहन का सिर ? यह कैसे हो सकेगा ? योहन ! सारे यहूदियों का धर्मपिता.. हेरोद का धर्मपिता ..क्या...

मेरीना—लो ! नहीं दोगे तो मैं जाती हूँ । (जाना चाहती है)

हेरो०—(रोककर) ठहर ! मेरीना !! ठहर !!! मै यहूदी जनता से शत्रुता मोल ले सकता हूँ मगर हेरोदिया को नाखुश नहीं कर सकता । जाकर शाबेल से कह दे—कल योहन को गिरफ्तार कर वह मेरे सामने हाज़िर करे—जा ! (मेरीना जाती है)

हेरो०—(विकल चिन्तित) धर्मपिता की हत्या !!! मैंने यह क्या किया ? वह मेरे मन्त्र-दाता हैं.. इस लड़की ने मुझसे यही दान क्यों माँगा ? कुछ समझ मे नहीं आता । खैर, जो होना था हो गया ।

दशम दृश्य

स्थान—एलाज़र का मकान। समय—रात्रि

(एलाज़र और डेविड)

एला०—डेविड! कभी इस विषय पर भी विचार किया है कि संसार मे "सबसे बड़ा" विशेषण किसको देना चाहिये?

डेविड—विचार तो नही किया है पर, जहाँ तक मैं समझता हूँ, इस विशेषण का अधिकारी सम्राट हेरोद का हाथी ही होगा।

एला०—उहुँक! अभी तुममें इन बातों के सोचने समझने की शक्ति नही है डेविड! सुनो, संसार मे सबसे बड़ा...

डेविड—(बीच ही में) आपका वह पुराना ऊंट है! ज़रूर वही है—ओह उसकी गर्दन क्या है—ताड़ का पेड़ है।

एला०—डेविड! मैने तो पहले ही कहा इस विषय मे तुम्हारी बुद्धि कुछ भी दख्ल नहीं दे सकती—व्यर्थ चेष्टा क्यों करते हो भाई! संसार मे सब से बड़ा......

डेविड—युरोशलीम के धर्म-मन्दिर का शिखर—ओह! महा ऊंचा है। आकाश से बातें करता है।

एला०—(खीझ कर) जब तुम समझते ही नहीं हो, तो फिर

बात को बीच ही से छीन क्यों लेते हो ?...डेविड ! संसार में सबसे बड़ा..

डेविड—आपका यह पेट है। कहिये ! अब मैं ठिकाने पर आ गया ?

एला०—(आश्चर्य से) अरे ! अबकी तो तुमने प्राय. ठीक उत्तर दिया ! डेविड, हमारा ही नहीं किसी का भी पेट संसार में सब से बड़ा होने का गौरव रखता है।

डेविड—सो कैसे जनाब ?

एला०—भाई भाई का शत्रु क्यों बन जाता है ? पेट के कारण। राजा प्रजा पर अत्याचार क्यों करता है ? पेट के लिये। मनुष्य होकर भी आदमी मनुष्य की गुलामी क्यों करता है ? पेट की भीति से। डेविड ! यदि पेट न होता—

डेविड—तब ? तब तो मनुष्य भयानक दिखाई पड़ेगा। पेट की जगह खाली होते ही मनुष्य के शरीर में एक बड़ी गुफा मुँह फैलाकर लोगों को डराने लगेगी। पेट का होना तो अत्यन्त आवश्यक जान पड़ता है साहब !

एला०—जब कोई मालिक नौकर को डाँटता है—धमकाता है—तब वह बेचारा अपना सिर नीचा करके सब कुछ सह लेता है ! उस सिर झुकाने में बड़ा भारी रहस्य है डेविड ! उस समय उस नौकर की आँखें पेट की ओर देखती हैं—और मानो

किसी मौन भाषा में कहती है—"यह सब तुम्हारे ही लिये सहन करना पड़ रहा है।"

डेविड—आपने बिल्कुल ठीक कहा जनाब।

एला०—डेविड! इस विषय पर मैं जितना ही ग़ौर करता हूँ—मेरी इच्छा उतनी ही प्रबल होती है कि मै भी ईसा का अनुयायी बन जाऊँ।

डेविड—क्यों—यहूदियों के इस प्राचीन धर्म पर आपकी अश्रद्धा क्यों हो गयी?

एला०—इसलिये कि यह धर्म परमात्मा की सर्व श्रेष्ठ रचना को अपमानित करता है—सप्ताह मे एक दिन पेट-पूजा करने से रोकता है।

डेविड—अब समझा! इसीलिये आप इतनी दूर की हाँक रहे थे। अच्छा तो ईसा का अनुगमन करने से आप सातो दिन "परमात्मा की सर्व श्रेष्ठ रचना का" सत्कार कर सकेंगे।

एला०—हाँजी—ईसा की सब बातो में यही तो एक मुख्य बात है। अरे भाई! वह पेट का बड़ा भारी पक्षपाती है। वह परमात्मा की प्रार्थना किन शब्दों मे करता है जानते हो?

डेविड—नहीं तो—यदि आप जानते हो तो बतलाइये।

एला०—नहीं जानते डेविड? वह प्रार्थना मुझे ऐसी पसन्द है कि पढ़ते-पढ़ते मारे प्रेम के भूख लग जाती है—अहा!

डेविड—कहिये—मैं सुनता हूँ...

एला०—(आँखें मूँद और हाथ जोड़ कर) "ऐ हमारे स्वर्गीय पिता ! मैं प्रार्थना करता हूँ तू मेरे अन्धकार को प्रकाश पूर्ण कर दे .." (रुकता है) देखो ! कुछ भूलता हूँ—"मेरी दिन भर की रोटी तू आज मुझे दे !"—अहा ! कैसी सुन्दर प्रार्थना ! मेरी दिन भर की रोटी तू आज मुझे दे !" डेविड !

डेविड—जनाब !

एला०—यदि इस प्रार्थना में एक बात और जोड़ दी जाय तो मैं आज ही ईसा का अनुगामी बन जाऊँ।

डेविड—वह कौनसी बात है—जनाब ?

एला०—भाई मेरे ! सूखी रोटी तो मेरे पूर्वजो ने भी न खायी होगी—"मेरी दिन भर की रोटी के आगे"—"और बढ़िया गोश्त या दूध" भी जोड़ देना चाहिये। ठीक कहता हूँ न ?

डेविड—बहुत ठीक। तो आप ईसाई होने जा रहे है ?

एला०—यदि मेरी शर्त पूरी कर दी जाय तो...

डेविड—परन्तु—आपको मालूम है ?

एला०—क्या ?

डेविड—सम्राट हेरोद ईसा का नाम सुनते ही आग हो लपट जाते हैं।

एला०—लिपटा करें। हमारा क्या खाक बिगाड़ेंगे ? अपने घर आग हुआ करें—किसी के डर से मैं परमात्मा की सर्वश्रेष्ठ रचना का अपमान करूँगा ?

डेविड—और हेरोदिया—पावे तो—ईसा को कच्चा ही खा जाय। ऐसी स्थिति में वह जहाँ सुनेगी कि आप उसके शत्रु ईसा के भक्त है—आप से युरोशलीम के धर्म-मंदिर की महत्ती छीन लेगी। तब क्या आप के "पेट"-भगवान का अपमान न होगा? तब इन्हे उत्तमोत्तम नैवेद्य कहाँ से लाइयेगा? बोलिये!

एला०—हूँ! यह बात तो बड़ी टेढ़ी है—डेविड! अपने धर्म को तो कभी छोड़ना ही न चाहिये—महन्ती छूट जाने से सातो दिन पेट-भगवान का अनादर होगा, ऐसे तो एक ही दिन होता है। सो भी जिसका होता होगा उसका होगा। यहाँ तो उस दिन और भी विधि से इनका (पेट दिखाकर) सत्कार होता है। हाँ, मन्दिर जाते समय जरा रोनी सूरत बना लेता हूँ। सिर में तेल वगैरह नहीं लगाता जिससे लोग समझें कि मैंने अखण्ड व्रत किया है डेविड!

डेविड—जनाब!

एला०—रात अधिक गयी—चलो, आज यहीं पर भोजन कर लो! अब घर कहाँ जाओगे।

डेविड—चलिये!

(प्रस्थान)

एकादश दृश्य

स्थान—हेरोद का दरबार। समय—दोपहर।

(हेरोद सिंहासन पर बैठा है। कुर्सियों पर अन्य दर्बारी तथा शावेल डटे हैं; सामने धर्म पिता योहन शिपाहियों के बीच में हथकड़ी पहने खड़े हैं।)

हेरो०—शावेल! धर्म पिता की हथकड़ी खोल दो! उसकी कोई आवश्यकता नहीं है।

योहन—नहीं, हेरोद! पड़ी रहने दे! उसके उतरवाने की ही कोई आवश्यकता नहीं है—तू अपना काम कर! मैं तेरी—एक अत्याचारी व्यक्ति की—दया नहीं चाहता।

हेरो०—धर्म पिता!

योहन—"योहन" कहकर पुकार हेरोद, इस समय धर्म पिता कहने से तू अपनी क्रूर-अभिलाषा की पूर्ति न कर सकेगा। क्या कहता है?

हेरो०—क्या आपने मेरे छोटे भाई फिलिप की स्त्री रानी हेरो-दिया के विषय में—जनता में भ्रम फैलाया है?

योहन—भ्रम फैलाना कहता है—शर्म नहीं आती नीच! मैंने जनता को हेरोदिया का सच्चा स्वरूप बताया है। हेरोद! तू भी तो उसके मृगलोचनों का शिकार है।

हेरो०—चुप रहो, बूढ़े धर्मात्मा! हेरोद को क्रोधित न करो—नहीं तो तुम्हारी रक्षा असम्भव हो जायगी।

योहन—हेरोद! योहन उसको छोड़कर (ऊपर दिखाकर) और किसी से डरता नहीं। तू मेरी रक्षा क्या करेगा! पहले अपनी तो कर। हेरोद! अब मेरा काम समाप्त हो गया—अब मुझे अपनी रक्षा की चिन्ता नहीं है।

हेरो०—तो आप अपना अपराध स्वीकार करते हैं?

योहन०—फिर वह दुष्टनीति! हेरोद, क्या सत्य बोलना भी अपराध है? जिस राजा के राज मे सत्य बोलना अपराध होता है उस राजा का शासन-सूर्य शीघ्र ही अस्ताचलगामी होता है।

हेरो०—यही सही—सभासदो! आप लोग क्या कहते हैं? धर्म पिता दण्डनीय हैं—या नहीं?

१ सभा०—अवश्य दण्डनीय हैं महाराज!

२ सभा०—परन्तु, महाराज! इस विषय मे इतनी शीघ्रता क्यो की जाती है? इसकी छानबीन होनी चाहिये।

योहन—छानबीन क्या होगी? युरोशलीम मे ऐसा कौन है जो यह नहीं जानता कि हेरोदिया दुराचारिणी है?

हेरो०—सभासदो! राजरानी हेरोदिया का अपमान करने के अपराध मे मैं धर्मपिता योहन को प्राण-दण्ड की आज्ञा देता हूँ—आशा है इससे हमारी दूसरी प्रजा उपदेश ग्रहण करेगी और भविष्य मे कोई ऐसा अपराध करने की हिम्मत न करेगी।

१ सभा०—सम्राट यह आप क्या कह गये ? इस छोटे से अपराध के लिये भविष्यद्वक्ता के प्राण-दण्ड की व्यवस्था ! यह आप क्या करने जा रहे हैं—महाराज ?

हेरो०—मैं लाचार हूँ महाशय ! इससे न्यून दण्ड में न्याय की रक्षा असम्भव है।

(तेजी से हेरोदिया का प्रवेश)

हेरोदिया—परन्तु, एक प्रकार से सम्भव है—बुड्ढे ! यदि तू रानी हेरोदिया के चरणों पर मस्तक रख कर और अपनी सुफेद दाढ़ी दिखाकर दया-भिक्षा माँगे तो तुझे प्राण-दान मिल जाना मुश्किल नहीं। बोल ! क्या चाहता है ? मृत्यु अथवा क्षमा ?

योहन—हेरोदिया ! अच्छे अवसर पर आयी। घड़ा भर गया है—उसपर ठेस देने का काम योहन की हत्या करेगी। तेरी होने वाली दुर्गति का विचार कर मुझे बड़ा दुख हो रहा है—हेरोदिया !

हेरोदिया—योहन ! हेरोदिया तुझसे उपदेश ग्रहण करने या मन्त्र लेने नहीं आयी है—वह तेरी भविष्यद्वाणी भी नहीं सुनना चाहती। तू मेरे प्रश्न का उत्तर दे ! क्या चाहता है ? मृत्यु या—क्षमा ?

योहन—योहन केवल उसीसे (ऊपर दिखाकर) क्षमा प्रार्थना कर सकता है। तुझ पापिनी से क्षमा-दान माँगने को योहन के हाथ नहीं उठेंगे। तू मेरी हत्या कर, मुझे खा जा ! इसीसे तुझे मुक्ति मिलेगी।

हेरोदिया—अच्छा तब यही—हो। सम्राट, आज रात तक इस बुड्ढे का सिर मेरे पास पहुँच जाना चाहिये। (ताने से) धर्म पिता! प्रणाम! (जाती है)

हेरो०—शावेल! ले जाओ! सन्ध्या तक योहन को प्राणदण्ड दे देना और इनका सिर मेरे पास भेज देना—जाओ!

(शावेल योहन को लेकर जाता है)

हेरो०—(सोचता है) अब तो हेरोदिया ने अपमान का बदला ले लिया। हेरोदिया और धर्मपिता—एक तुला पर—घोर अन्याय! नहीं, नहीं, अन्याय कौन कह सकता है? मै सम्राट हूँ अन्याय कौन कहेगा?

द्वादश दृश्य

स्थान—जंगल में वध-भूमि। समय—सन्ध्या

(योहन, जल्लाद और शावेल)

शावेल—योहन ! तैयार हो जा !

योहन—ज़रा ठहर जा शावेल ! मुझे प्रार्थना कर लेने दे..

शावेल—प्रार्थना किससे करेगा—बुड्ढे ! यहाँ पर न तो महारानी हेरोदिया हैं और न सम्राट हेरोद—फिर ऐसा कौन है जिससे प्रार्थना कर तू अपना कुछ उपकार कर सकेगा ?

योहन—तू अभी बहुत अँधेरे में है शावेल ! योहन—हेरोद और हेरोदिया से प्रार्थी नहीं हो सकता। वह तो उससे प्रार्थना करेगा जिसके इशारे ही से लाखों हेरोद और हेरोदिया बना-बिगड़ा करते हैं। शावेल !

शावेल—क्या कहता है ?

योहन—वह देख ! सूर्य अपनी किरणें समेट रहा है। उसका मुख लाल है। जान पड़ता है पृथ्वी का पाप देखकर उसे क्रोध चढ़ आया है और ऐसे पापियों को प्रकाश-दान देने के लिये वह पश्चात्ताप कर रहा है ! ले सूरज की दिव्य किरणें पाप कालिमा

से नहाकर उसके पास लौट गयीं। अब वह जाना चाहता है—वह गया! कुछ समझा!

शावेल—समझा क्या—तू पागल हो गया है!

योहन—पागल न समझ शावेल! इसी सूर्य के साथ दुनिया से योहन भी जायगा और अपने संग युरोशलीम की सुख-श्री लेता जायगा।

शावेल—अच्छा अब तू तैयार होजा!

योहन—ठहर! युरोशलीम का भविष्य सुन ले! मेरे पीछे काम करने वाला आ गया है। वह मुझसे कहीं प्रबल है। मैं तो जल से शुद्ध करके मन्त्र देता था, वह आग से शुद्ध करके मन्त्र देगा। वह मुझसे कहीं बड़ा सत्याग्रही है। मुझे भले ही मार ले परन्तु उसको मार कर भी अत्याचार मार न सकेगा—वह अमर है!

शावेल—योहन! भविष्यद्वाणी कौन नहीं कर सकता? देख, एक भविष्यद्वाणी मैं भी करता हूँ—क्षणभर बाद तू मारा जायगा। तैयार होजा।

योहन—(घुटने टेककर) हे मेरे स्वर्गीय पिता! मैंने भरसक अपना कर्त्तव्य पालन किया है अब यहाँ पर मेरी आवश्यकता नहीं जान पड़ती। मैं तेरी शरण में आता हूँ...मुझे अपने चरणों में स्थान दे—!

शावेल—(बधिकों से) भोंक दे—तलवार!

योहन—(मरते-मरते) पिता.. ...इ . .न्हें . . . .क्षमा ..... कर.. ...(तड़प कर मर जाता है) (स्टिफ़ेन का प्रवेश)

स्टि०—यह क्या ! . ...खा गया ? राक्षश शावेल ! धर्म-पिता—को खा गया ? (योहन के शव से लिपट कर) हाय ! प्यारे पिता मुझसे देर हो गयी ! मै तुम्हें बचा न सका...

(पटाक्षेप)

महात्मा ईसा

नाटक

द्वितीय अंक

है ? भला पिताजी अपने मन मे क्या सोचेंगे ? तब ? पिताजी से कह दूँ कि मैंने ईश को अपना जीवन-धन बना लिया है ?—पर, कैसे यह कहूँगी ? तब फिर क्या करूँ ?

(गाती है)

गज़ल

वह मित्र[1] प्यारा कमल का था उसे किसने छल से डुबा दिया
यह शोक वज्र-समान सरसिज-सिर पै किसने गिरा दिया !
अभी गा रहे थे जहाँ भँवर, श्रो ! डुला रही थी हवा चँवर
वहाँ जा के अमृत में ज़हर किस बेख़बर ने मिला दिया !
सित विकसिता सरसी खुली, मधु-मस्त मानस की कली
उसे हाय ! औचक किस छली ने रुला दिया, मुरझा दिया !

(विवेकाचार्य का प्रवेश)

विवे०—बेटी !

शान्ति—(भाव छिपाने की चेष्टा करती हुई) क्या आज्ञा है पिता जी ?

विवे०—आज तुझसे कुछ आवश्यक बाते कहनी है। तू जानती है तेरे माता-पिता कौन हैं ?

शान्ति—(आश्चर्य से) यह आप क्या पूछते हैं पिता जी !

विवे०—बेटी ! तू नही जानती कि तेरे पिता कौन हैं। और

1 सूर्य्य।

इस समय सम्भवतः यहाँ पर कोई भी इस बात को नहीं जानता है। बेटी ! तू अपनी जीवनी सुनेगी ?

शान्ति—पिताजी ! आपकी बातो ने तो मुझे चकित कर दिया है। अच्छा कहिये। आप मेरे विषय मे क्या जानते है ?

विवे०—आज से पन्द्रह वर्ष पहले की बात है। मै संसार-भ्रमण के लिये निकला था। घूमते-घूमते जब मै म्लेच्छ-देश मे पहुँचा तब एक दिन एक पहाड़ी की तराई मे तुझको पड़ी पाया। मालूम पड़ता है पृथ्वी पर आते ही तू अनाथ बनाकर छोड़ दी गई थी। (शान्ति की ओर देखकर) बेटी !

शान्ति—कहिये, पिता जी। फिर क्या हुआ ?

विवे०—मुझे तेरी हालत पर दया आ गयी। मैने अपने शिष्यो से तुझे उठा लेने को कहा। तभी से तू मेरे साथ है। तुझे मैने पुत्री की तरह पाला-पोसा है। ईश को देख मैने सोचा था कि ..(चुप हो जाते हैं)

शान्ति—क्या सोचा था—पिता जी ?

विवे०—(ठंडी साँस लेकर) जो कुछ सोचा था व्यर्थ सोचा था—जाने दे बेटी—उस बात को।

शान्ति—जाने क्यों देगे पिता जी—उसे भी बतलाइये। आपने क्या सोचा था ?

विवे०—मैने ईसा के हाथो में तुझे सौंप देने को सोचा था।

परन्तु मेरी धारणा व्यर्थ निकली—ईसा इस संसार में विवाहित होने के लिए नहीं आया है।

शान्ति—तब वह किस लिए आये हैं—पिता जी ?

विवे०—वह आया है—उन अंधों को आँखें देने जो सब कुछ देखते हुए भी कुछ नहीं देखते हैं। उन बधिरों को कान देने जो सब कुछ सुनते हुए भी कुछ नहीं सुनते। उन पंगुओं को पैर और लूलों को हाथ देने जो अंग रहते हुए भी अकर्मण्य बने हैं।

शान्ति—पिता जी !

विवे०—वह आया है—उनको जीवन देने जो कि प्राणों के रहते हुए भी मृतक बने हैं। उनकी आत्मा को बलवती बनाने जो भ्रम से उसे दुर्बल समझते हैं। उनकी हृदय-वीणा के तारों को झंकरित करने जो उसे टूटी समझ कर अपना जीवन-गीत भुला बैठे हैं। बेटी ! ईश विवाहित होने के लिए नहीं आया।

शान्ति—परन्तु—पिताजी !

विवे०—"परन्तु" क्या—शान्ति।

शान्ति—मैं तो उन्हीं को अपना पति मानती हूँ।

विवे०—इतनी शीघ्रता ! शीघ्रता न कर बेटी ! यह जीवन और मरण का प्रश्न है। इसे चुटकी बजाते-बजाते हल नहीं किया जा सकता।

शान्ति—पिताजी ! मेरा जन्म चाहे कहीं भी क्यों न हुआ हो परन्तु लालन-पालन सीता, सावित्री और दमयन्ती की पवित्र

गोद में हुआ है। जब से मुझे बोध हुआ है तभी से यही सुनती आ रही हूँ कि स्त्रियाँ एक बार—केवल एक बार—हृदय-दान कर सकती है। भला भारत माता की धूल मे पली हुई कोई बालिका इस स्वर्गीय नियम का उल्लंघन कर अपना मस्तक ऊँचा रख सकती है?

विवे०—बेटी!

शान्ति—पिताजी! मुझे क्या मालूम—आपही ने तो अनेक बार देवी सावित्री की कथा सुनाई है और उनकी प्रशंसा इसलिये की है कि सत्यवान की आयु केवल एक वर्ष की है—यह जान कर भी उन्होंने उन्हें अपना पति चुना था—और चुना था इसलिये कि आयु जानने के पहले ही सावित्री ने उन्हें हृदय-दान कर दिया था। क्या मेरी भी इस समय वैसी ही स्थिति नहीं है?' पिताजी! आपसे एक प्रर्थना—

विवे०—क्या है बेटी! कहो।

शान्ति—आप मुझे वहाँ जाने की आज्ञा दीजिये जहाँ पर मेरे पति देव गये है। वह चाहे मुझे अपनायें या त्याग दें। परन्तु अब उनके बिना मेरी गति कहीं नहीं है।

विवे०—बेटी! ईश का निवास-स्थान भारतवर्ष से कई सहस्त्र कोस दूर देश मे है। वहाँ का मार्ग पशु-हृदय से भी अधिक कठिन है। ऐसी स्थिति में भला मै तुझे क्योंकर जाने दे सकता हूँ।

शान्ति—नहीं पिताजी! आप मुझे न रोकिये। मैं सुख-दुख

सह सकती हूँ, जल-मर भी सकती हूँ परन्तु अपने आराध्य-देव के चरणों से दूर नहीं रह सकती। आप मेरे जाने का प्रबन्ध कर दीजिये।

विवे०—अभी चलो, देवता के पूजन का समय हो गया है। मैं कोई युक्ति सोचूँगा। तुम बिल्व-पत्र लेकर देवालय में आओ। मैं वहाँ चलता हूँ।

शान्ति—जो आज्ञा। (प्रस्थान)

विवे०—(गंभीर मुद्रा से) भेज दूँ? कैसे?—ओह! वह मार्ग—जिस पर हम पुरुषों के कठोर पद भी रक्ताक्त हो जाते थे—उस पर मेरी शान्ति चलेगी! कैसे? नाः!—पर नहीं क्यों? वह पतिव्रता बाला है, आदर्श कन्या है। उसका मार्ग कंटकों में से हो या फूलों में से—हँसती हुई वह उसे पार कर लेगी।—क्यों न करेगी!—वह विवेकाचार्य की कन्या है। मैं उसे अवश्य उसके पति के पास भेज दूँगा (सोचते हैं) पर साथ में कौन जायगा? चन्द्रमौलि को भेज दूँगा! नहीं। उसके बिना आश्रम की बड़ी हानि होगी। राकेश को भेजूँ? पर वह तो बड़ा ही डरपोक है। ठीक याद आयी—सन्तोष को शान्ति के साथ कर दूँ। वह सच्चरित्र, निर्भीक और बुद्धि-मान युवक है। उससे ईसा से पटती भी खूब थी। बस उसी को साथ कर दूँगा—यही ठीक है।

द्वितीय दृश्य

स्थान—जंगल। समय—दोपहर

(ईसा और बारह शिष्य)

ईसा—"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन" पीटर! हमे कर्म करने मात्र का अधिकार है। उसका फल हमारे क़ाबू मे कदापि नही। अस्तु, जो काम हमे मिला है उसे—फल की चिन्ता छोड़ कर—पूरा करना चाहिये।

पीटर—प्रभो, हमे कौन सा काम मिला है?

ईसा—अभी पूछते हो पीटर? तुम्हे अपना काम ही नही दिखलायी पड़ रहा है? तुम्हारे देश मे सत्ताधारी दल अत्याचार का डमरू बजाकर तांडव नृत्य कर रहा है—उसे कौन रोकेगा? देवता के नाम पर मन्दिरो में जीव, धर्म, दया और मनुष्यता का बलिदान किया जा रहा है—इस पर कौन आँसू बहायेगा?—"चुप रहो! सब तुम्हारे भले के लिये किया जा रहा है!" कह कर प्रजा पर जो वज्रपात हो रहा है उससे सबकी रक्षा कौन करेगा? कहो! अब तुम्हें अपना काम समझ पड़ा? तुम क्या सोचते हो फिलिप?

फिलिप—सोचता हूँ—लड़के है, उन्हे शाम तक भोजन कौन

जुटायेगा ? कुछ खेतीबारी हैं उनका निरीक्षण कौन करेगा ? घर कौन सँभालेगा ? प्रभो ! साथ मे ऐसा खटराग रहते हुए भी क्या हम कुछ कर सकते हैं ?

ईसा—फिलिप ! तुम ईश्वर और धन दोनो की सेवा कदापि नहीं कर सकते। लड़के तुम्हारे हैं इसे तुम किस बल पर कहते हो ? या उनके गर्भ मे आने के पहले भी तुम्हें ज्ञात था कि तुम्हें लड़के ही होंगे ? या आज तुम दृढ़ता से यही कह सकते हो कि वे कल भी तुम्हारे रहेंगे ?

फिलिप—प्रभो ! यह कौन कह सकता है ?

ईसा—यदि नहीं ! तो छोड़ो उनकी चिन्ता ! विश्वास रखो, जिसका जो है उसे वह अवश्य दिया जायगा और जिसका जो नहीं है वह उसे कदापि न मिल सकेगा। तुम्हारे लड़कों के खाने का प्रबन्ध—उसने यदि उचित समझा होगा तो—कर दिया होगा। एण्ड्रू ! ठीक है न ?

एण्ड्रू—मैं देखता हूँ प्रभो ! इस कर्त्तव्य-पालन मे हमे प्राणो की बाज़ी लगानी पड़ेगी !

मैथ्यू—यही तो मैं भी विचारता हूँ।

ईसा—मैं तुमसे कहता हूँ अपने प्राणों की चिन्ता न करो ! क्योंकि तुम मे से ऐसा कौन है जो चिन्ता करके अपनी आयु की दौड़ को एक हाथ भी आगे बढ़ा सकता है ?

पीटर—प्रभो! हम प्राण तो दे देंगे परन्तु क्या भूखों मर कर? सर्दी से सिकुड़कर? जिस समय अत्याचार से डरी हुई जनता मे हम निर्भयता का बीज बोयेंगे उस समय भी हमारे यह पेट और तन तो साथ ही रहेंगे? इनकी रक्षा कैसे होगी भला? आप क्या समझते हैं? हेरोद के विरुद्ध हमे कोई भोजन देगा? कदापि नहीं!

ईसा—उत्तेजित न हो पीटर! जरा विचार करो! उधर देखो! आकाश में पक्षियों का समुदाय तुम्हें देख और तुम्हारी बातें सुनकर हँस रहा है। भला बताओ तुम्हें कौन खाने को देता है? और कौन वस्त्र देता है? ये न तो बोते हैं और न काटते बटोरते फिर भी—हमारा स्वर्गीय पिता अपनी क्षुद्र से क्षुद्र सन्तान की चिन्ता करता है। सबको भोजन कराता है! इन छोटी छोटी बातो पर मत जाओ!

सब०—धन्यवाद गुरुदेव। हम सब तैयार हैं। अब आज्ञा हो।

ईसा—(प्रसन्न) अच्छी बात है। ईश्वर तुम्हें इस बुद्धिमानी के लिए पुरस्कार दे। सुनो। सुधार पहले अपने घर का करना पड़ेगा। पहले भीतरी पवित्रता पर ध्यान दो। फिर तो बाहरी संसार उसकी ज्योति के सम्मुख मस्तक झुका देगा। तुम पहले इस्रायलियों के पास जाओ और उनसे कहो कि वे अत्याचार के प्रतिकार के लिये—आत्म-सुधार के लिए, तैयार हो जायँ।

क्योंकि इस नारकीय-शासन की विदाई और स्वर्गीय-राज्य का आगमन निकट है।

फिलिप—प्रभो! हम अपना क्या-क्या सामान साथ मे रखेंगे?

ईसा—कोई भी सामान नहीं फिलिप! सोना न चाँदी और न ताँबा ही। झोली न अंगे और न लाठी ही। तुम एक ग्रामीण—दरिद्र-देहाती—वेश मे कर्मक्षेत्र मे उतरना। अपनी सेवाओं का पुरस्कार—मनुष्य से—कदापि न लेना। अमूल्य वस्तु को थोड़े मूल्य पर कदापि न बेचना! इसी मे तुम्हारा कल्याण है। तुम लोग ख़ूब सतर्कता से काम करना। क्योंकि भेड़ों को मैं भेड़ियों के बीच मे भेज रहा हूँ। तुम्हे सर्प-सा चतुर और कपोत-सा सीधा होना चाहिये। विपक्षी तुम्हारी बड़ी-बड़ी दुर्दशा करेंगे। तुम्हें अपनी अदालतो को सौपेंगे, जहाँ पर तुम्हारे ऊपर झूठे-झूठे दोष लगाये जायँगे। देश की सेवा करने पर भी तुम चोरो की सजा पाओगे—कोड़ों से पीटे जाओगे। दुखों को तुम जितनी ही दृढ़ता से सह सकोगे—स्वर्ग का राज्य उतना ही सन्निकट आवेगा।

एण्ड्रू—प्रभो! हम लोग सब कुछ सहने को तैयार हैं।

ईसा—तुम देखोगे। विपक्षियों को मेरे नाम से भी बैर हो जायगा। और उसी के कारण भाई भाई को तथा पिता पुत्र को बध कराने के लिये अत्याचारियों को सौंप देंगे। इस परीक्षा में जो उत्तीर्ण हो वही धन्य होगा। वीरो! सारे देश को सत्याग्रह के

लिये तैयार करो। सब के कानो तक अहिंसा का संदेश पहुँचा दो। प्रत्येक हृदय को प्रेम—निस्वार्थ-प्रेम का परिचय करा दो। अत्याचारी हो या पीड़ित, राजा हो या प्रजा, पिता हो या पुत्र, पति हो या पत्नी सबसे कहो—कोई भी अपनी आत्मा का अपमान न सहे। आत्मा की प्रतिष्ठा रखने के लिये संसार मे सभी स्वतन्त्र है और रहना चाहिये। यह जो मै तुमसे अँधेरे मे कहता हूँ उसे उजाले मे जाकर कहो। और तुम उनसे कदापि न डरो—जो शरीर को तो मार सकते हैं परन्तु आत्मा का बाल भी बाँका नहीं कर सकते। डरना केवल उसी से चाहिये जो इन दोनो का नाशक और स्रष्टा है—आओ—चलें!

तृतीय दृश्य

स्थान—हेरोद के प्रासाद का कमरा। समय—रात्रि।

(हेरोद थाल में रखा हुआ योहन का सिर देख रहा है)

हेरो०—(सिर से) बूढ़े धर्मपिता! भला तुझे क्या पड़ी थी जो तूने राजनीति के जाल में अपने पैर अड़ा दिये? देखा! इस अपराध का कितना कड़ा दण्ड होता है? राजा परमात्मा का अंश है। उसके सुख में बाधा डालना बड़ा भारी पाप है—और उसका दण्ड है शिरच्छेद! ह ह ह ह अभागे बूढ़े! तूने समझा होगा कि परमात्मा कोई बली मनुष्य है जो तुझे कोरे धर्म के नाम पर मरते देखकर बचा लेगा। अब तू जान गया होगा कि परमात्मा केवल पुस्तकों मे काले अक्षरों के रूप में है—या दुर्बलों के हृदय में भय बन कर छिपा रहता है। (मूछों पर हाथ फेरता) हेरोद के यहाँ किसी परमात्मा या उसके पुत्र की गति नहीं। क्योंकि वह स्वयं सम्राट है। उसके बराबर का ओहदेदार है। (ठहर कर) हेरोदिया अभी नहीं आई! आ प्यारी हेरोदिया! देख! तू धन्य है जो एक सम्राट की प्रेयसी है। क्योंकि तेरे विरुद्ध भविष्यद्वाणी कहने वाले का भविष्य स्वयं मृत्यु के मुख में चला जाता है!—चाहे वह सारे यहूदियों का हृदय-सम्राट धर्मपिता योहन ही क्यों

न हो। ओह! बाहर कितना विकट अन्धकार है! वायु का स्वर कितना रूखा और भयंकर है! हेरोदिया नहीं आई! कोई है?

(दासी का प्रवेश)

दासी—(नमित) क्या आज्ञा है? प्रभो!

हेरो०—जा! सम्राज्ञी को बुला ला!

दासी—जो आज्ञा महाराज! (प्रस्थान)

हेरो०—(कटे सिर की ओर देखकर) अरे! इसका मुख कितना विकृत हो गया है! आँखें बाहर निकल आई हैं। जान पड़ता है—मुझे पैशाचिक दृष्टि से देख रहा है! क्या मरने के बाद सभी इतने भयंकर हो जाते है? नहीं। ऐसा तो न होता होगा। सुना है जिसकी हत्या होती है वह प्रेत होता है। तो—क्या धर्मपिता भी प्रेत हुए होंगे?—ओह! इतनी तीव्र दृष्टि? ऐसा तो मैंने कभी नहीं देखा था। अरे यह सिर तो हँसने लगा!! हँसने लगा!!! धर्मपिता! क्या तुम प्रेत होकर मुझसे बदला लोगे? (ठहर कर) मैं भी क्या डर गया—वाह! मै? सम्राट हेरोद—अनन्त धन और जन का स्वामी होकर डरूँ एक प्रेत से? हुँ—मैं! हेरोद—(हवा से दीपक बुझ जाता) अरे! अरे!! यह दीपक कैसे बुझा? दासी! दासी!! कोई है? दौड़ो!! बापरे बाप!!! इसकी आँखें कैसी चमक रही है—बढ़ रही हैं (पीछे हट कर) मेरी ओर बढ़ रही है!! इतनी बड़ी? ओह! बड़ी भयङ्कर हैं!!! यह हाथ किसका है? अरे! इसमे तो हथकड़ी का चिह्न है! यह तो योहन

भविष्यद्वक्ता का हाथ है।—मेरी ओर। मेरी ओर—क्यों बढ़ाते हो बाबा। मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है?—यह—यह हँसा कौन? वह फिर। मुर्दे का सिर हँस रहा है? हटाओ—हटाओ। भाई, अपना हाथ मेरे गले पर से हटाओ। दम—मेरा दम घुट रहा है। क्षमा कर दो ओ ओ ओ ओ। मअ—अ—र—अ—अ—आ।

(मूर्छित होकर गिरता है—हेरोदिया आती है)

हेरोदिया—दासी! दासी!! दीपक जला! महाराज विपत्ति में हैं! सम्राट! प्यारे!

चतुर्थ दृश्य

स्थान—एक पार्वतीय-प्रान्त। समय—सायं।

(शान्ति और सन्तोष)

सन्तोष—बहन! थोड़ी देर बाद हम लोग भारतवर्ष की सीमा से बाहर हो जायँगे। देखो, यह उसका अन्तिम पर्वत विदेशियो का द्वार बन्द करके अचल रूप से बैठा हुआ हमारे स्वर्ग-सुन्दर देश की छटा देख रहा है।

शान्ति—स्वर्ग-सुन्दर देश? भैया! क्या भारतवर्ष ही स्रष्टा की सर्वोत्कृष्ट सृष्टि है?

सन्तोष—हाँ बहन! अपने और पराये सभी अनुभवी पुरुषो ने इस बात को स्वीकार किया है। क्या गुरुदेव ने कभी तुम्हें अपना "संसार-भ्रमण" नामक ग्रन्थ नहीं दिखलाया था?

शान्ति—नहीं तो। उसमे क्या है सन्तोष?

सन्तोष—उसमे उन्होने सब देशो का विस्तृत वर्णन लिखा है और अन्त मे स्वदेश . भारतवर्ष का वर्णन किया है। मुझे उस पुस्तक का एक अश मजे मे याद है। उसमे गुरुदेव ने लिखा है—"जान पड़ता है, विधाता ने सब देशो की उत्तमताओ से भारतवर्ष की रचना की है। अथवा, अपनी सम्पूर्ण बुद्धि का उपयोग करके

पहले इस देश का निर्माण किया और फिर अन्य देशों को इससे कमतर, न्यून सुन्दर बनाया है।. . . . "

शान्ति—अच्छा !

सन्तोष—हमारे हिमालय के मस्तक-सा और किसी भी भूधर का मस्तक ऊँचा नहीं है। हमारे ब्रह्मपुत्र से बड़ा और कोई भी नद नहीं है। हमारी गङ्गा से अधिक स्वास्थ्यकर, सुस्वादु और पवित्र पानीवाली और कोई भी नदी नहीं है।"

शान्ति—और क्या लिखा है उसमें सन्तोष ?

सन्तोष—"हमने संसार के इतिहास का यथासाध्य मंथन किया है। परन्तु हमें दधीचि के टक्कर के दान-वीर, हरिश्चन्द्र के टक्कर के सत्य-वीर, रामचन्द्र के टक्कर के आदर्श-पुरुष तथा युद्ध-वीर और भगवान् कृष्ण के टक्कर के कर्मवीर कहीं भी नहीं मिले ! हनुमान और अर्जुन की चरण-धूलि भी कहीं नहीं नज़र आई—।"

शान्ति—धन्य ! आर्य-भूमि. . .!

सन्तोष—"ऐसा देश भारत ही है जिसके पर्वत से सती पार्वती प्रकट होती हैं, जिसकी पृथ्वी से जगज्जननी जानकी जन्म ग्रहण करती हैं और जहाँ की धूलि पर सती शिरोमणि सावित्री, दमयन्ती और द्रौपदी अपनी बाल-लीला समाप्त करती हैं !"

शान्ति—(दुःख से) सन्तोष !

सन्तोष—बहन !

शान्ति—मैं कैसी अभागिनी हूँ जो ऐसे देवलोक से दूर जा रही हूँ...

सन्तोष—नहीं बहन ! तुम अभागिनी कदापि नहीं हो। तुम भी इसी गौरव-मय स्वर्गलोक की एक किरण हो। तुम्हें देख कर विदेशियों के हृदय पर भारतवर्ष की महिमा का सिक्का जम जायगा।

शान्ति—भैया !

सन्तोष—बहन !

शान्ति—सूर्यदेव अस्ताचल के सन्निकट पहुँच गये हैं। यह सामने का धवल-तुषाराच्छादित पर्वत अपने अनंत प्रपात-नेत्रों से भगवान् भुवन-भास्कर के लिये रो रहा है ! वह देखो। उसकी अंतिम सुवर्ण किरणें अपने कोमल करों से पर्वतराज के नेत्रो का जल पोंछ रही हैं ! भैया ! सम्भवतः अब मुझे पुनः इस पवित्र दृश्य के देखने का अवसर न मिलेगा। अस्तु, आओ ! इसी चट्टान पर बैठ कर स्वदेश का गौरवमय यश गान कर लें तब आगे चलेंगे।

सन्तोष—गाओ बहन।

शान्ति—गाओ ! (दोनों गाते हैं)

राष्ट्रीय गान

जय उदार, सृष्टि-सार, स्वर्ग-द्वार देश !

पुण्य-मय स्वदेश !

धर्म-कर्म जनक देश !

अनय-मूल-खनक देश !

विश्व-विदित कनक-देश !

पुण्य-मय स्वदेश !

बल अपार, दल अपार भुवन हार देश !

पुण्य मय स्वदेश !

शस्य-पूर्ण सतत हरित !

अमृत-सम सुफल फरित !

नव-निधि सिधि सकल भरित !

पुण्य मय स्वदेश !

जन अपार धन अपार, जग-शृंगार देश !

पुण्य-मय स्वदेश !

पंचम दृश्य

स्थान—एलाजर का घर। समय—रात्रि

(एलाज़र और डेविड)

एला०—डेविड ! कल तुम कहाँ थे ?

डेविड—कल मैं युरोशलीम का तमाशा देख रहा था—एलाजर !

एला०—कैसा तमाशा ?

डेविड—कल धर्मपिता योहन का सिर तुम्हारी-दयामयी महारानी के इच्छानुसार काटा गया था न ?

एला०—हाँ आँ आँ आँ—सिर काटा गया था ? क्यों भाई ! क्या उन्होंने महारानी का भोजन जूठा कर दिया था ?

डेविड—अजी ! नहीं। तुम्हे तो खाने की ही पड़ी रहती है। अजीब आदमी हो !

एला०—(ठीक से न सुन कर) अजीब आदमी तो था ही ! भला भोजन उसने जूठा क्यों कर दिया ? उसे भूख लगी थी तो मेरे पास चला आता। कल महारानी ने मेरे लिये बहुत उत्तम भोजन बनवा कर भेजा था।—परन्तु डेविड !

डेविड—क्या ?

एला०—(सोचता) अब कुछ-कुछ समझ मे आ रहा है कि कल महारानी ने मुझ पर इतनी कृपा क्यो की। (दुख से) हाय ! हाय !! इस हेरोदिया ने मेरा बड़ा अपमान किया—डेविड !

डेविड—अपमान तो हुई है। धर्म पिता योहन ही ने तो आप को भी मन्त्र दिया था ?

एला०—(झिझक कर) अजी मन्त्र दिया था तो क्या उसका जूठा खा लूँ ? वाह ! तुम भी बड़े भारी न्याय-कर्त्ता हो ! जरूर उसने वही जूठा भोजन किसी और को न देकर मेरे यहाँ भेज दिया था !—ओह ! घोर अपमान !!

डेविड—एलाजर, तुम पागल तो नहीं हो गये ? कौन कहता है कि धर्म पिता ने हेरोदिया की रसोई जूठी कर दी थी ?

एला०—तुम्हारी बातों को छोड़ कर और कौन कह सकता है ? भोजन नहीं जूठा किया था तो उनका सिर क्यों काटा गया ? अब बातें बनाने से एलाजर नहीं मान सकता। ओह ! घोर अपमान ! जूठा भोजन !

डेविड—सुनो, धर्मपिता का सिर काटा गया इसलिये कि वे तुम्हारी महारानी के आचरणो से अत्यन्त असन्तुष्ट थे और उनका विरोध दृढ़ता से कर रहे थे।

एला०—कैसे आचरण जी ! साफ-साफ क्यों नहीं कहते ?

डेविड—साफ़ साफ सुनोगे ? सुनो ! धर्म पिता जानते थे कि उसने तुम्हें अपनी विषय-वासनाओं की पूर्ति के लिये ही युगो-

शलीम के मन्दिर का महन्त बनाया है। उन्होंने अपनी दिव्य-दृष्टि से तुम्हारी महारानी के उन सब अनाचारों को देख लिया था जिन्हें वह देवमन्दिर में ही करती थीं—या हैं। इन्हीं सब कारणों से धर्मपिता ने सत्याग्रह किया था। अपने प्राणों की चिन्ता छोड़ हेरोदिया का सच्चा परिचय सब को दिया था। और—

एला०—(डेविड के वाक्य को पूरा करता)—इसीलिये महारानी हेरोदिया ने उन्हें स्वर्गलोक जाने के लिये वाध्य किया। अच्छा ही तो किया—डेविड !

डेविड—इतने नीचे न गिरो एलाज़र—चुप रहो ! वे तुम्हारे भी धर्म पिता थे।

एला०—भला हेरोदिया ने बुरा क्या किया ? वे यहाँ पर रहते तो रोज़-रोज़ धर्म-धर्म चिल्लाया करते—परन्तु मनुष्य तो उनके इच्छानुसार धार्मिक कदापि न बनता। इसलिये मारे दुख के एक न एक दिन उनका मर जाना उतना ही निश्चित था जितना कि मेरा रोज़—नहीं—नहीं—दिन मे सात बार भोजन करना। डेविड। हेरोदिया ने उन्हे महा दुख से बचा लिया। धन्य महारानी हेरोदिया। (बरब्बा का प्रवेश)

बरब्बा—एलाज़र !

एला०—(डर से आँखें बन्द कर लेता है)...ग़लती...हुई... धर्म पिता।—क्ष—मा—करो।—अब—ऐसा—कभी—न—कहूँगा।—कान—पकड़—ता—हूँ। (कान पकड़ता है)

डेविड—अरे भाई। यह क्या करते हो ? धर्म पिता कहाँ हैं। यह तो कोई और ही व्यक्ति है। आँखे खोलकर देखो तो।

बरब्बा—एलाज़र ! पहचानता है मुझे ?

एला०—तुम्हे ?—आपको ?—पहचानता क्यों नहीं हूँ ?—वहाँ जोर्डन नदी के तट पर—आप ही ने तो मुझे मन्त्र दिया था ? आप—मेरे—गुरु धर्म पिता योहन . ।

बरब्बा—चुप रह। गधा कहीं का। इधर देख। नहीं तो गला दबा दूँगा।—देखता है कि नहीं ?

एला०—(काँप कर) देखता हूँ—गला न दबाइये।—देखता—हूँ (आँखें खोलकर) अरे।—आप ?—आपको—तो—मैंने—कभी नहीं देखा। डेविड। कभी देखा है ? कभी—नहीं। सच कहता हूँ—गला न दबाइये।—कभी—नहीं।

बरब्बा—सुन। मेरा नाम बरब्बा है।

डेविड—(आश्चर्य से) बरब्बा ? प्रसिद्ध डाकू सरदार ?

बरब्बा—हाँ—वही...

एला०—(काँपता हुआ) सब ले जाओ। लो यह ताली। (ताली निकाल कर देता है) पर—पर मेरा गला न दबाओ ले जाओ।

बरब्बा—एलाज़र। अपनी ताली अपने पास रख।—मैंने उसी दिन से डाकू कर्म का परित्याग कर दिया जिस दिन मेरा मन्त्रदाता चाण्डालिनी हेरोदिया द्वारा मारा गया।

ग्ला०—तब आपको क्या चाहिये ?

बरब्बा—सुन, अब मैं केवल हत्या किया करूँगा।

ग्ला०—(व्यग्र होकर) नहीं—मुझे छोड़ दो। मै हाथ जोड़ता हूँ। मुझे छोड़ दो। बापरे। (कान में डेविड से) डेविड ! क्या यह तुम्हे नही मारेंगे ?

डेविड—नहीं। इनका गुस्सा धर्मपिता के विरोधियो पर है और हेरोदिया के कृपा-पात्रो पर—ये मुझे न मारेंगे।

ग्ला०—(काँप कर) तो क्या आपका पहला शिकार मैं ही—? न बाबा ! मुझको छोड़ दो !

(बरब्बा के पैर पकड़ता है)

बरब्बा—अच्छा, मै तुझे छोड़ दूँगा। मगर, अपनी जान के लिये तुझे एक काम करना पड़ेगा।

ग्ला०—करूँगा हजार काम। आप मुझे छोड़ दीजिये। मैं सब कुछ करूँगा।

बरब्बा—जिस दिन मैं कहूँ उस दिन हेरोदिया की उपस्थिति मे मुझे धर्म-मन्दिर में आने देगा ? बोल, है स्वीकार ?

ग्ला०—क्यों नही स्वीकार है ? पर, आप मेरी जान तो न मारियेगा ?

बर०—देखा जायगा। इस समय मै जाता हूँ। फिर मिलूँगा। याद रखना।

(प्रस्थान)

एला०—डेविड ! यह क्या हुआ ? भाई !

डेविड—पाप का परिणाम। एलाज़र ! चेतो। अभी सबेरा है। अब मैं भी जाता हूँ। तुम्हारे साथ रहने में पूरा प्राण-भय है।

(एलाज़र को चकित छोड़ द्रुत प्रस्थान...)

षष्ठम् दृश्य

स्थान—एक झोपड़ी। समय—रात्रि

(टूटी चारपाई पर रक्त-मज्जा-मय वृद्ध कोढी पड़ा है और ईसा उसके सिरहाने सुश्रूषारत बैठे है)

ईसा०—सचमुच स्वर्ग यहीं है। उसका निवास-स्थान है भूखों की भूख, प्यासो की प्यास और असहायों की सहायता में। जितना समय लोग देवालयो में आत्म-विज्ञापन में नष्ट करते हैं यदि उसका चतुर्थांश भी सेवा-मार्ग मे लगाये तो उन्हे देवाराधन से शतगुण अधिक फल मिले। देवता इतने स्वार्थी नहीं हो सकते कि महज़ अपनी चापलूसी सुन कर प्रसन्न हो जायँ। यदि कोई ऐसा भी देव है तो वह अपने पद का दुरुपयोग करता है।

कोढ़ी—अ-ह! बड़ा कष्ट . भगवन!

ईसा—(उसके मुँह के पास जाकर) कहो भैया! तुम्हें क्या कष्ट है? पानी चाहिये? लाऊँ?

कोढ़ी—नहीं—भैया! जान पड़ता है इस ओर पीब बह रही है। वहाँ तक मेरा हाथ नहीं पहुँच रहा है! बगल वाले घाव मे भी कीड़े पड़ गये है! आह हाय!! (रोने लगता है)

ईसा—अरे भाई ! तुम रोते क्यों हो ? चुपचाप पड़े रहो। मैं तुम्हारा रक्त, पीब पोछ देता हूँ न। (अपने कुरते से उसकी पीब पोंछ और दवा लगाकर) कहो ! अभी कीड़े कष्ट देते हैं ?

कोढ़ी—नहीं, नहीं—बेटा ! तुम हो कौन जो मेरे लिये इतने कष्ट सह रहे हो ? तुमने अपना कुरता मेरी घृणित पीब और रक्त में क्यों रँग लिया है ? भैया ! तुम भगवान् ही तो नहीं हो ?

ईसा—विश्वास करो ! मैं तुम्हारे ऊपर कोई भी अहसान नहीं कर रहा हूँ। यह केवल कर्त्तव्य-पालन है। जो मनुष्य विपत्ति में मनुष्य की सहायता नहीं करता—भैया ! उसके लिये स्वर्ग के राज्य में जरा भी जगह नहीं है। कौन कहता है कि तुम मेरे कोई नहीं हो ? भला ऐसा कौन कहेगा—हम सब एक ही परम-पिता की सन्तान तो हैं !

कोढ़ी—इस पापक-युग में ऐसा कौन सोचता है... बेटा ! जान पड़ता है तुम इस अंधकार-पूर्ण यहूदिया के सूर्य हो। भैया ! सुना है वैतुलहम के भाग्यवान जोजेक का पुत्र ईसा बड़ा ही दयावान है। उसे हमारे धर्मपिता ने—जिन्हें पातकी हेरोद ने अभी उस दिन मरवा डाला !—अपने बाद आनेवाला सर्व-श्रेष्ठ भविष्यद्वक्ता और परमात्मा का कृपा-पात्र कहा है। तुम उसी के शिष्य तो नहीं हो ?

(लाठी टेकते हुए दूसरे वृद्ध का प्रवेश)

वृद्ध—मेरे बच्चे की रक्षा ! ऐ दाऊद की सन्तान ! मेरे लाल को बचा !

ईसा—आप कहाँ से आ रहे हैं? आपके पुत्र को क्या हुआ है?

वृद्ध—बेटा! उसे रक्त गिर रहा है। आज से नहीं—दो वर्षों से। सहस्रों वैद्यों की औषधियाँ करने पर भी वह अच्छा नहीं हुआ! हाय! वही इस क्षीण-अस्थि-पंजर का प्राण है! मेरा एक-मात्र पुत्र! हाय!! (सिर थामकर बैठ जाता है)

ईसा—लेकिन इस वक्त मै कैसे चल सकता हूँ? देखिये, इनकी अवस्था भी शोचनीय है। सम्भव है आज रात भर सेवा करने से कल कुछ स्थिति सुधर जाय। इन्हे भला मै किसके आसरे छोड़ दूँ?

वृद्ध—तब? क्या मेरा बच्चा न बचेगा? हाँ, वह आज अवश्य न बचेगा! आज उसे बड़ा कष्ट है। कोई भी सहायक नहीं है! बटोहियो से यह सुन कर कि "ईसा इसी ग्राम मे है"—अपने लाल की जीवन-भिक्षा माँगने के लिये मै तेरे पास आया हूँ। क्या खाली हाथ लौट जाऊँ?

ईसा—महाशय! मुझे चलने मे तो कई भी आपत्ति नहीं—पर एक ऐसा आदमी यहाँ के लिये चाहिये जो मेरे कहे मुताबिक इनकी देख भाल करे। बिना ऐसा किये रोग बढ़ जायगा। हाय! बेचारा बुड्ढा बड़े कष्ट मे है! बाबा, जरा गाँव मे देखो! यदि इनके पास कोई रात भर रह सके तो मै अभी आपके साथ ही चला चलूँ। जरा देखो तो!

वृद्ध—अच्छा जाता हूँ। सबके हाथ-पैर जोड़ूँगा। परन्तु भैया! यह हेरोद का राज्य है—जिसकी प्रजा का हृदय पत्थर से बनाया गया है। उसमें दया और सहानुभूति के लिये स्थान नहीं है! जाता हूँ—देखूँ! (प्रस्थान)

ईसा—इतने दुःख! इस संसार में इतने हाहाकार! क्यों? दयामय! मनुष्य पर ही तुम्हारा कोप इतना कठोर क्यों है? (सोचकर) समझ गया—यह सब हमारी ही दुर्बलता का फल है। यदि हम एक दूसरे से सहानुभूति-पूर्ण व्यवहार रखते, "आत्मवत सर्व भूतेषु" मानते...

कोढ़ी—(सीधा होकर) भैया! तुम जाते क्यों नहीं?

ईसा—कैसे जाऊँ बाबा! तुम्हारी दशा भी तो बुरी है।

कोढ़ी—नहीं। तुम जाओ! अब मैं चंगा हो जाऊँगा। मेरी चिन्ता छोड़ दो! उस अनाथ बूढ़े के पुत्र की रक्षा करो दयामय! वह बहुत दुःखी है। जाओ! मैं मर भी जाऊँ तो कोई चिन्ता नहीं—मेरे क्या आगे-पीछे कोई रोने वाला है? मरने से तो मेरी और भी बन जायगी। जाओ भैया! जाओ!

(वृद्ध का पुनः प्रवेश)

वृद्ध—कोई नहीं मिला! द्वार-द्वार मैंने अपनी दुःख-पूर्ण कहानी सुनाई। सुनकर दुःख-पूर्ण मुख-मुद्रा दिखलायी सबने मगर, ईसा के स्थान पर काम करने को कोई भी तैयार नहीं है। सब डरते हैं! वैसा करने से हेरोद उन्हें जीवित न रहने देगा।

ईसा—ऐसी बात। भय के क़दमो पर कर्त्तव्य की कुर्बानी! स्वार्थ के लिये मनुष्यता का अपमान। ऐसे संसार मे दुःख नही होगा तो होगा क्या? हाय! अब मै क्या करूँ? (हाथ जोड़ कर) पिता! मुझे परीक्षा मे न डाल! प्रभो! इस समय अपने कर्त्तव्य का निश्चय करने मे असमर्थ हूँ। मेरी मदद कर।

(शान्ति और सन्तोषचन्द्र का प्रवेश)

शान्ति—जाओ! मेरे देवता! वृद्ध-दुखी की सुश्रूषा मै करूँगी।

ईसा—(आश्चर्य से) क्या! मै स्वप्न तो नही देख रहा हूँ? शान्ति और सन्तोष? भारतवर्ष से यहूदिया? (हाथ जोड़कर ईश्वर से) यह कैसी सहायता प्रभो!

शान्ति—नाथ! मैने जैसे ही आपके जन्म-स्थान बैतुलहम मे पैर रक्खा—वैसे ही एक आदमी ने आपके इस ग्राम मे होने का समाचार दिया। फौरन—मै यहाँ के लिये चल भागी। मैने कुटी के बाहर से ही इन वृद्ध महाशय की करुण कथा सुन ली है। अब आप शीघ्र जाकर इनके बेटे की रक्षा कीजिये।

ईसा—(गम्भीर) शान्ति!

शान्ति—प्रभो!

(शान्ति पर ईसा की एक भाव-मयी दृष्टि)

ईसा—(वृद्ध से) चलो! उस परमपिता ने तुम्हारे ऊपर दया कर स्वर्ग से इन्हे भेजा है। अब तुम्हारे पुत्र की रक्षा निश्चित है।

वृद्ध—धन्य हो—बेटा! (शान्ति से) माँ! तुम कौन हो! (सन्तोष से) भैया! तुम तो हेरोद की प्रजा नहीं जान पड़ते.

ईसा—ये इस लोक के प्राणी नहीं है। कहा न! इनका घर देवलोक मे है—जो दया की. उदारता की और मनुष्यता की जन्मभूमि है!

सप्तम दृश्य

स्थान—जोजेफ का घर। समय—दोपहर

(जोज़ेफ़ विचार-मग्न)

जोजेफ—मुझे प्रलोभन दिया है! पातकी! अपने गुरु का हत्यारा! भला तेरे प्रलोभन से जोजेफ अपना कर्त्तव्य-पथ छोड़ देगा?

(दास का प्रवेश)

दास—प्रभो, बाहर सम्राट हेरोद के सेनापति खड़े हैं।

जोज़ेफ—उन्हें यहीं लाओ!

दास—प्रभो! क्या आप—

जोजेफ—(रोककर) नहीं! मैं उसकी अगवानी के लिये घर के बाहर न जाऊँगा। वह सेनापति हो या स्वयं सम्राट हेरोद ही क्यों न हो।

(दास का प्रस्थान)

जोज़ेफ—आ गया। यह शावेल ही हेरोद का दाहिना हाथ है। उससे कहीं बड़ा क्रूर! यदि वह समुद्र है तो यह उसका भयंकर क्षोभ है। वह सर्प है तो यह उसका विष-दन्त है।

(शावेल का प्रवेश)

शावेल—नमस्कार महोदय !

जोज़ेफ०—नमस्कार ! सेनापतिजी, आज आप गरीबों की झोपड़ी की ओर कैसे भूल पड़े ?

शावेल—सो तो आपको कल ही मालूम हो गया होगा। आपको सम्राट का पत्र मिला न ?

जोज़ेफ—यह कहिये। इसलिये आपका आगमन हुआ ? अच्छा महाशय इस देश-द्रोह का सम्राट पुरस्कार क्या देंगे ?

शावेल—आप इसे देश-द्रोह कहते हैं ? राजा की आज्ञाओं का पालन करना प्रजा का मुख्य कर्त्तव्य है। क्योंकि वही देश का रक्षक है। ऐसा न करना ही देश-द्रोह है।

जोज़ेफ—ठीक कहते हैं, सेनापति जी ! आप बड़े भारी राजनीतिज्ञ जान पड़ते हैं। हाँ, तो राजा की आज्ञा का पालन करना प्रजा का मुख्य कर्त्तव्य है, भले ही उस आज्ञा-पालन से अपने लोक-परलोक बिगड़ जायँ। क्यों ठीक है न ?

शावेल—आप बातें कैसी करते हैं साहब !

जोज़ेफ—यही तो मैं भी सोचता हूँ। राजा की आज्ञा सर्वथा माननीय है। चाहे वह धर्म-मन्दिर को वेश्या-भवन बना दे चाहे वह एक कुलटा के कारण धर्म पिता की हत्या करा दे चाहे वह प्रजा के सिर पर राजस्व-कर का एक पहाड़ लाद दे ! सभी अवस्थाओं में और सभी समयों में "राजा की आज्ञा माननीय है"—क्यों नहीं !

शावेल—महाशय! बातों को कहते समय आप यह न भूल जाया कीजिये कि आप किससे बातें कर रहे हैं। शावेल आपकी भर्त्सना सुनने के लिये यहाँ पर नहीं आया है। मुझे सम्राट के पत्र का उत्तर दीजिये।

जोज़ेफ—उत्तर चाहिये सेनापति? देता हूँ, हाँ, मुझे क्या पुरस्कार मिलेगा?

शावेल—सम्राट, आपको वैतुलहम का चौधरी बना देंगे और यहाँ के सारे 'कर' आप ही को मिलेंगे। सम्भव है—उनके जन्म दिवस के उपलक्ष में आप "यहूदिया के सूर्य" की उपाधि भी पा जायँ। महाशय! यह पद बड़े-बड़े राजाओं के लिये भी दुर्लभ है।

जोज़ेफ—अब कृपा कर यह भी बतला दीजिये कि मुझे सम्राट की कौन-सी सेवा करने के लिये इतना बड़ा पुरस्कार दिया जायगा? इस बारे में उस पत्र में कुछ साफ सूचना नहीं है।

शावेल—विशेष कुछ नहीं। आप अपने लड़के को समझा दीजिये—सम्राट के विरुद्ध उत्पात न मचाये। अपना आन्दोलन स्थगित कर दे।

जोज़ेफ—आन्दोलन स्थगित कर दे! केवल इसलिये कि उसका बाप वैतुलहम का चौधरी बनाया जायगा और यहूदिया का प्रकाश-हीन-सूर्य? क्यों महाशय, मेरा पुत्र किस आन्दोलन का संचालक है?

शावेल—अभी आप पूछते हैं? तमाम यहूदियों में वह सम्राट

हेरोद का व्यर्थापवाद फैला रहा है। लोगों को क्रांति करने के लिये उभाड़ रहा है। गाँव-गाँव में उसके अनुयायी अपने सिद्धान्तों का प्रचार कर रहे हैं। क्या यह सब आपसे छिपा हुआ है ?

जोजेफ—लेकिन सेनापति जी ! वह किसी को तलवार लेकर सम्राट के विरुद्ध युद्ध ठानने को तो नहीं कहता है ? आपकी बातों से तो यही प्रकट होता है कि सत्य बोलना ही 'राज द्रोह' है। भला सम्राट की झूठी निन्दा क्या ईसा ने की ? क्या हेरोदिया से अनुचित सम्बन्ध कर सम्राट अपने को बदनाम नहीं कर रहे हैं ? क्या उसी के लिये उन्होंने धर्मपिता की हत्या नहीं करायी है ?

शावेल—(क्रोध से) जोजेफ !

जोजेफ—(गम्भीरता से) शावेल !

शावेल—देखो, अब तुम बहुत बढ़े जा रहे हो।

जोजेफ—अच्छी बात है। अब बैतुलहम के चौधरी तुम्हीं बन जाना ! मैं न बनूँगा।

शावेल—जानते हो जोजेफ !—

जोजेफ—जाओ—शावेल ! अब तुम उसी हेरोद के यहाँ जाओ ! मैं तुम्हारे ऐसों से बातें भी नहीं करना चाहता। मैं देश-द्रोह कर 'चौधरी' और 'यहूदियों का सूर्य' बनना पाप समझता हूँ ! समझे ?

शावेल—(क्रोध से) घबराओ मत ! तुम्हें शीघ्र ही अपने

लड़ैत की समाधि पर फूल चढ़ाना पड़ेगा। पानी की सैर और मगर से बैर...!

जोजेफ—पुत्र की समाधि पर फूल सजाने से मैं नहीं डरता। एक दिन तो सभी की समाधि पर पुष्प चढ़ाये जायँगे! हाँ, धन्य है वही जिसकी समाधि परोपकार के लिए, स्वदेशोद्धार के लिये या आत्मा की पुण्य पुकार के लिये सजे।

शावेल—इतना अभिमान! जोजेफ! सम्राट की आज्ञा न मानेगा तू? एक चींटा!—अच्छा, देखता हूँ। (प्रस्थान)

जोजेफ—मूर्ख, तू जिस बल के देखने-देखाने की धमकी देता है मुझे उसकी तृणमात्र भी चिन्ता नहीं है।

अष्टम दृश्य

स्थान—उद्यान । समय—प्रात

(शान्ति गाती है)

गाना

(सोरठ)

देखा प्रेम-मय संसार
प्रेम ही में चल रहा है सृष्टि का व्यापार !
वायु आकर निकट कलियों के करे नित प्यार,
भ्रमर गा-गा कर सुनाते निज हृदय उद्गार !
प्रियतमा-निज भूमि पर लख ताप अत्याचार,
स्नेह से झुकते जलद दल बरसते जल धार ! (ईसा का प्रवेश)

ईसा—शान्ति !

शान्ति—प्रभो !

ईसा—यह मधुर गीत सुनने वाला स्वप्न में भी नहीं सोच सकता कि तुम भारतवर्ष से यहूदिया तक पैदल चल कर आ सकती हो । भला कहीं कपोती समुद्र पार कर सकती है ? परन्तु शान्ति ! तुम्हारे आज के गान में कुछ दूसरा ही रस है । भारत-वर्ष में तुम्हारा गान सुनने से मेरे हृदय में एक प्रकार की मादकता

भर जाती थी परन्तु आज मालूम पड़ता है—तुम किसी पवित्र तार को झंकार रही हो !

शान्ति—आप आ कहाँ से रहे हैं ?

ईसा—उसी वृद्ध के घर से। तीन दिनों के बाद—आज उसके बेटे के बचने की आशा हुई है। उस रोगी का क्या हुआ जिसकी तुम देख भाल कर रही थीं ?

शान्ति—अब वह बहुत अच्छा है। उसका कोढ़ दिन-पर-दिन आश्चर्यजनक रीति से साफ हो रहा है। पर आपने कुछ सुना है ?

ईसा—क्या ?

शान्ति—बहुत से लोग आपके विरुद्ध भाषण और घातक षड्यन्त्र रच रहे हैं।

ईसा—यह तुमसे कौन कहता था ?

शान्ति—कहेगा कौन ? मैंने स्वयं सुना है। बहुत से अधिकारियों का कहना है कि आपने भूतों को वश में कर रखा है और इन्हीं की सहायता से लोगों को चंगा और चकित करते फिरते हैं।

ईसा—कहने दो शान्ति ! अभी क्या—चन्द ही दिनों में वे मुझ पर दो-चन्द नाराज़ होंगे। इसका कारण यह कि वे लोगों को भय से भीत कर वश में रखने के आदी हैं। किसी को प्रेम का पुरस्कार प्रेम पाते देख उन्हें यह डर लगता है कि कहीं उनके महत्त्व की इति न हो जाय। लेकिन उनके षडयन्त्र और हमारे काम से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है। हम लोग अपना काम करते ही चलेंगे।

शान्ति—नाथ !

ईसा—इस झगड़े में व्यर्थ तुम क्यों पड़ती हो ? जब मैं तुम्हारी स्थिति पर विचार करता हूँ तो मुझे एक विचित्र चिन्ता आ घेरती है ।

शान्ति—नाथ ! संसार के बहुत से ऐसे प्रश्न हैं जिनका कोई ठीक उत्तर नहीं दिया जा सकता है । वैसा ही आपका यह प्रश्न भी है ! रही मेरे कष्ट की बात सो, उसकी चिन्ता आप स्वप्न में भी न कीजियेगा । शान्ति ! हर तरह के दुःख झेल सकती है और आपके लिए हँसती हुई मर सकती है ।

ईसा—परन्तु शान्ति ! ईसा तुम्हारे इस स्वर्गीय-त्याग के सम्मुख अत्यन्त तुच्छ है । उससे तुम अपने प्रेम का उचित पुरस्कार न पा सकोगी ।

शान्ति—प्रभो, प्रेम पुरस्कार नहीं चाहता । उसे कष्ट में ही सुख मिलता है । उसे केवल एक करुणा-कृपा-कटाक्ष की भूख रहती है । शान्ति आपके किसी भी कार्य में बाधा न डालेगी । आप उसे अपना तेरहवाँ शिष्य ही समझिये ।

ईसा—नहीं । यह नहीं हो सकता । मैं जान बूझकर तुम्हें संकट में नहीं डालूँगा । मेरा कौन ठिकाना—इस वक्त मेरी वही हालत है जो युद्ध के लिये तैयार सिपाही की होती है—न जाने कब, कहाँ पर मैं मार डाला जाऊँ ! यह सब जानते हुए भी मैं

नवम दृश्य

स्थान—धर्म-मन्दिर। समय—प्रातः

(एलाज़र, डेविड)

एला०—भाई ज़रा एक काम करो !

डेविड—फर्माइये !

एला०—तुम्हें मालूम है ? आज शाम को यहाँ पर महारानी आने वाली हैं।

डेविड—यह कहिये ! तब तो मैं आपका काम करने में असमर्थ हूँ महाशय !

एला०—क्यों भाई, क्यों न करोगे ?

डेविड—नाः ! मैं उसके नाम तक से घृणा करता हूँ, काम करना तो दूर की बात है।

एला०—अच्छा मेरा ही एक काम कर दो महाराज ! (मुँह बनाता है)

डेविड—हाँ, वह शायद कर दूँ—कहिये !

एला०—ज़रा बाहर जाकर पहरेदारों से कहिए, शहर के कूड़ों को आज मन्दिर में न आने दें। महारानी आने वाली हैं। मुमकिन है उनकी आँखों में पड़ जायँ।

डेविड—कूड़े कैसे साहब ?

एला०—वही दुनिया भर के दरिद्र—कोढ़ी, अन्धे और पंगु। रविवार को धर्म-मन्दिर में येही अधिक आते हैं। ये बदमाश तो इतने बड़े होते हैं कि कबूतर के जोड़े को कौन कहे कभी मक्खी का जोड़ा भी नहीं चढ़ाते! (द्वारपाल का प्रवेश)

द्वार०—प्रभो! बाहर बहुत से ग़रीब, कोढ़ी और पंगु दर्शन के लिये खड़े हैं। उन्हें भीतर आने दूँ ?

एला०—रोको! रोको!! उनकी हवा भी यहाँ न आने पावे। मुझे भी शायद कोढ़ हो जाय।

(द्वारपाल जाना चाहता है—एलाज़ार उसे लौटाता है)

एला०—मगर—सुनो तो! उनमें से किसी के पास कुछ है भी—भेंट-पूजा ?

द्वार०—हाँ, प्रभो! एक कोढ़ी बलिदान के लिये एक जोड़ा कबूतर लाया है।

एला०—कबूतर—कपोत—लाया है ? तब—तब तो—क्या किया जाय डेविड!

डेविड—किया क्या जाय साहब! सबों को भीतर आने दीजिये! आप भी बड़ी ज़बरदस्ती की बातें करते हैं! आपको यह न भूल जाना चाहिये कि यह धर्म-मन्दिर है—सबके आने की जगह है। यहाँ पर हेरोदिया के महलों का नियम नहीं चल सकता।

एला०—चुप भी रहो उसकी निन्दा न करो! वह हमारी

महारानी है। अन्नदाता है। (द्वारपाल से) देखोजी ! किसी प्रकार कपोत का जोड़ा लपक लो और उसे (हाथ से इशारा) खसका दो। समझे ?

द्वार०—जो आज्ञा महाराज ! (प्रस्थान)

एला०—डेविड !

डेविड—क्या कहते हो ?

एला०—कल जिस समय मै भोजन कर रहा था एक बड़ी विचित्र घटना हो गयी। ओह ! बड़ी ही विचित्र !!

डेविड—कुछ कहिये भी। क्या हुआ ?

एला०—ह ह ह ह डेविड ! बड़ी विचित्र !

डेविड—क्या हुआ साहब !

एला०—ओह ! जिस समय मै रसेदार मछली खा रहा था—एक चूहा ! हा हा हा हा—डेविड !

डेविड—चूहा क्या ? उसने भी आपके भोजन में हिस्सा लगाया ?

एला०—(गम्भीर होकर) वाह ! हिस्सा लगाना क्या हुआ मजाक हो गया। हिस्सा लगने लगे तब तो एलाजर महाशय खा चुके। आज चूहे का हिस्सा, कल बिल्ली का, परसों कुत्ते का—तरसों गदहे का ! हँ-हँ तुम भी खूब कहते हो ! चूहा हिस्सा बटायेगा ?

डेविड—तब क्या हुआ ? कुछ कहिये भी।

एला०—वही चूहा शायद मेरी मछली में हिस्सा लगाने को आया था। और मुझसे बिना पूछे ही उसने मेरी थाली में मुँह डालकर खाना भी आरम्भ कर दिया!...उस समय डेविड! मुझे भी खूब सूझी! ह ह ह ह!

डेविड—क्या सूझी?

एला०—मैंने क्या समझा—कोई मछली ग़लती से थाली के बाहर गिर गयी है। बस, यह विचार आते ही झपट कर मैंने उसे पकड़ ही तो लिया और बिना किसी प्रकार का विलम्ब किये उसका आधा हिस्सा मुँह मे डाल कर काटना चाहा!

डेविड—अरे! आप भी बड़े विचित्र जीव है! फिर उस चूहे का बचाव कैसे हुआ?

एला०—ज्यो ही मेरे दाँत उसकी पीठ पर पड़े वह चीख उठा और उसी मुख-मन्दिर मे ही लगा प्राथना करने। मगर, खाने की जल्दी मे फिर भी मै उसे चूहा न समझ सका।

डेविड—ओह! क्या हुआ फिर?

एला०—जब उसने अपनी प्रार्थना व्यर्थ जाते देखी तब मेरी जीभ को अपने तेज छोटे दाँतो से खूब जोर से धर दबाया। तब मैने जाना कि वह चूहा था। चट मुँह के बाहर निकाल कर मैने पूरी ताक़त से उसे दूर फेक देना चाहा। पर वह भी निपट ढीठ—थाली ही मे गिरा।

(दरब्बा का प्रवेश।)

बरब्बा—एलाज़र !

एला०—(उठ कर) आप...आइये !

बरब्बा—आज तुमने ग़रीबों को मन्दिर मे आने क्यों नहीं दिया ? बोलो !

एला०—मेरा क्या दोष है जो आप मुझपर, बिगड़ रहे हैं। मुझे ऐसी ही आज्ञा मिली है।

बरब्बा—किसकी आज्ञा—हेरोद की ?

एला०—नहीं। महारानी की !

बरब्बा—हेरोदिया की। वह आज कब आयेगी यहाँ ?

एला०—अब आती ही होगी।

(द्वारपाल का प्रवेश)

द्वार०—प्रभो ! महारानी की सवारी आ रही है।

एला०—अच्छा तुम बाहर चलो। (बरब्बा से) महाराय महारानी आ रही है। आप...

बरब्बा—(व्यंग से) मैं छिप जाऊँ ? बहुत अच्छा धर्मपिता छिप जाता हूँ। परन्तु याद रखना आज तुम्हारी महारानी का अंत निश्चित है। और—यदि कुछ बोले तो—तुम्हारा भी।

(एक कोठरी में छिप जाता है। हेरोदिया का प्रवेश)

हेरोदिया—(शराब से लड़खड़ाती) धर्मपिता ! धर्मपिता !!! मेरा प्यारा—शावेल आया—या नहीं ?

एला०—अभी तो नहीं आये ? आते ही होंगे। आप बैठें।

हेरोदिया—बैठूँ? अभी नहीं आया? मेरा प्यारा! धर्मपिता! तुम्हे मै कैसी लगती हूँ? बताओ! कैसी लगती हूँ? (एलाज़र से सट जाती है)

एला०—(ज़रा हटकर) आप देवी सी सुन्दरी जान पड़ती है महारानी!

हेरोदिया—ठीक कहते हो धर्मपिता! मै बड़ी ही सुन्दरी हूँ। शावेल! प्यारे!

(बरब्बा प्रकट होता है)

बरब्बा—हेरोदिया!

हेरोदिया—यह कौन? प्रियतम? शावेल! आओ!

(आगे बढ़ती है फिर चौंक कर रुक जाती है)

बरब्बा—शावेल यहाँ नहीं है हेरोदिया! इधर देख! अब तैयार हो जा!

हेरोदिया—तुम कौन हो जी जो मुझे लाल लाल आँखे दिखाते हो! महन्त एलाज़र! यह कौन है?

एला०—(चुप)

बरब्बा—मै कौन हूँ—सुनेगी? मेरा नाम बरब्बा है।

हेरोदिया—बरब्बा? डाकुओं का सरदार? बदमाश।

बरब्बा—हाँ—वही। हेरोदिया! आज वह तुझसे धर्मपिता याहन की हत्या का बदला लेगा।

हेरोदिया—चुप रह! मै महारानी हूँ। महंत इसे पकड़ ला!

बरब्बा—(हेरोदिया का गला दबा कर) पहले भगवान को याद कर ! फिर एलाज़र से पकड़ने के लिये कहना । हत्यारिनी !

हेरोदिया—(व्यग्र होकर) आ.. ह ! छोड़...दे.. रे ! (छटपटाती है)

बरब्बा—(हेरोदिया की छाती में छुरा भोंककर) छोड़ दे ! अब तू ही इस पृथ्वी का गला छोड़ दे—जा ! तुझे नरक ही में रहना चाहिये ।

हेरोदिया—हा.. य...म...री ! (मृत्यु)

(सिपाहियों के साथ शावेल का प्रवेश)

शावेल—(बरब्बा से) तूने यह क्या किया ? महारानी की हत्या ! तू कौन है रे ?

बरब्बा—मैं जो हूँ सो हूँ—तुझसे मतलब ।

शावेल—तूने महारानी की हत्या क्यों की ?

बरब्बा—यह पूछने वाला तू कौन ? चुप रह !

शावेल—सिपाहियो ! इसे गिरफ्तार कर लो !

बरब्बा—मैं स्वतः अपने को गिरफ्तार कराता हूँ ! अब मेरा काम हो गया—पकड़ लो मुझे !

दशम दृश्य

स्थान—सभा-भवन। समय—तीसरा पहर

(अनेक अध्यापकों महन्तों और नागरिकों के बीच में ईसा)

ईसा—(एक नागरिक से) भैया! तुम्हारे हाथ मे क्या हुआ है?

नाग०—प्रभो! इसमे न जाने क्या हो गया है जिसके कारण यह सूख गया है। बड़ा कष्ट है महाराज! खाने-पीने से लाचार हूँ।

ईसा—अच्छा, यहाँ आओ! (दवा लगाकर) जाओ परमात्मा को धन्यवाद दो, तुम्हारा हाथ उसकी कृपा से शीघ्र ही नीरोग हो जायगा। (एक अध्यापक से) क्यो महाशय आप आश्चर्यजनक दृष्टि से मेरी ओर क्यों देख रहे हैं?

अध्यापक—गुरुदेव! आज तो विश्रामवार है, आज आपने इनका हाथ अच्छा कर क्या धार्मिक नियम का उल्लंघन नही किया है?

ईसा—मैं आपसे एक बात पूछता हूँ। यदि आपकी भेड़ विश्रामवार को किसी गड्ढे मे गिर जाय तो उसे आप उसी मे रहने दीजियेगा या निकालियेगा?

अध्यापक—रहने क्यों दूँगा? उसे गड्ढे के बाहर निकालूँगा।

ईसा—तब—भैया ! क्या मनुष्य के प्राणों का मूल्य एक भेड़ इतना भी नहीं है जो इनके अच्छा किये जाने पर आप आश्चर्य प्रकट कर रहे हैं ? जिस धार्मिक नियम से दया का अपमान होता हो उसका त्याग करना ही धर्म है। (एक दूसरे नागरिक से) भैया ! अब तुम्हारी आँखे कैसी है ?

नागरिक—अब तो प्रभो ! मुझे भली प्रकार दिखाई पड़ने लगा है। आप धन्य है। यह आपकी ही कृपा का फल है जो मेरी गयी हुई आँखें लौट आईं ! (दो महन्त आपस में फुसफुसाते हैं)

पहला—मैंने कहा था न—इसने अपने वश में भूतों को किया है ! नहीं तो इन हज़ारो आदमियों की फूटी हुई आँखें कैसे अच्छी होती ?

दूसरा—तुमने बहुत ठीक कहा भाई, भूत ही की सहायता से यह भूत-ग्रस्तो को भी अच्छा करता होगा...!

पहला—और नहीं तो क्या।

ईसा—(उनकी बातें सुनकर) भैया ! तुम्हारी बातें मैं सुन रहा हूँ। परन्तु तुम्हारी यह धारणा सरासर झूठ है। अच्छा, मान लो, मै भूत की सहायता से भूत निकालता हूँ। इससे साबित हुआ कि भूतों मे वैमनस्य है। जहाँ वैमनस्य होता है वहीं पर कहीं सर्व-नाश भी छिपा रहता है। अस्तु, उनका सर्वनाश ही निकट होगा। और यदि तुम समझ सको कि यह सब परमेश्वर की कृपा का फल है, तो निश्चय जानो ! स्वर्ग का राज्य निकट है।

निन्दा करने के समय तुम 'आत्मा' की अवहेलना न किया करो। क्योंकि वह—पवित्र आत्मा की निन्दा न सुन सकेगा।

एक अध्या०—प्रभो! आपके जीवन का उद्देश्य क्या है? क्या आप हमे शान्ति का मंत्र देने आये है?

ईसा—नहीं। ऐसा मत समझो कि मै पृथ्वी पर मेल कराने को आया हूँ। मै यहॉ पर रक्त की नदियॉ बहाने और तलवार चलाने को आया हूँ। मै पिता को पुत्र से, मां को बेटी से, तथा सास को पुत्र-वधू से असहयोग कराने आया हूँ।

दूसरा अध्या०—इसका क्या अर्थ है प्रभो!

ईसा०—इसका अर्थ है आत्मस्वातंत्र्य। यदि पिता की आज्ञा पुत्र की आत्मा के विरुद्ध है तो उसे चाहिये कि वह अपने पिता से अत्यन्त नम्र शब्दों मे असयोग कर दे। यही नियम सम्पूर्ण संसार के लिये है—और मै इसी का प्रचारक हूँ।

एक नाग०—प्रभो, मै आपके इस विचार से सर्वथा सहमत हूँ और आपका अनुगमन करने को तैयार हूँ।

ईसा०—परन्तु भैया! मेरे साथ वही चल सकता है जिसने अपने घर-द्वार, पुत्र-कलत्र की चिन्ता छोड़ दी है—धन को लात मार दिया है और अपनी पीठ पर अपना क्रूस लाद लिया है।

दूसरा नाग०—क्रूस की क्या आवश्यकता है प्रभो।

ईसा—बड़ी भारी आवश्यकता है भैया! हमारे साथियो का परमेश्वर के यहॉ जाने के समय क्रूस ही सीढ़ी का काम देगा।

जिस समय तुम दुरात्माओं से असहयोग कर अपने धार्मिक युद्ध का आरम्भ करोगे उसी समय तुम्हें कोड़ों की मार को विनोद, कारागार को विश्राम-स्थान तथा क्रूस को मुक्ति की सीढ़ी स्वीकार कर लेना पड़ेगा। बिना ऐसा किये विजय असम्भव है।

तीसरा नाग०—आपने युरोशलीम का समाचार सुना है? महाराज!

ईसा—युरोशलीम ही का क्या सम्पूर्ण देश के समाचार सुने। सब संवाद एक दूसरे से भयंकर है।

चौथा नाग०—प्रभो, देश का कैसे उद्धार होगा?

ईसा—भैया! इस समय बहुतों की आत्मायें सत्य और धर्म के भावों से शून्य हैं। चारों ओर अनाचार और अधर्म का आतंक फैला हुआ है। इसलिये पहले लोगों में धार्मिकता और सत्याग्रह का मन्त्र फूंकना होगा।

पहला नाग०—प्रभो! सच्चा धर्म क्या है?

ईसा—सत्य के लिये मर मिटना, भय से अपनी आत्मा का अपमान न करना तथा सब पर दया रखना।

दूसरा नाग०—सब पर दया रख कर हम विपक्षी का प्रतिवाद कैसे करेंगे?

ईसा—प्रतिवाद हो कु-कर्म्मों का न कि कुकर्म्मी का—एक जीव के नाते सभी, सदैव दया के पात्र हैं।

एक अध्या०—गुरुदेव! अभी आप ही न कह रहे थे कि

आप संसार में तलवार चलवाने और रक्त की नदियाँ बहवाने का आये हैं ? फिर यह दया कैसी ?

ईसा—तलवार तो अवश्य ही चलेगी। तुम देखोगे एक ओर आत्मा की पुकार पर मरने वालों की खुली छातियाँ होंगी और दूसरी ओर एक से एक भीषण प्राण-नाशक-यंत्र ! ऐसी स्थिति मे रक्त की नदियों का बहना निश्चित है। भाई ! हम मरेंगे, पर मारेंगे कदापि नहीं ! मरने के समय भी हमे अपने विपक्षियो की दुर्बलताओ पर शोक रहेगा और उनकी स्थिति पर दया ! समझे ? अब इस समय चलो, चला जाय। प्रार्थना का समय हो गया है।

एकादश दृश्य

स्थान—नदी-तट। समय—सन्ध्या

(मेरीना अकेली खड़ी है। उसका मुख शोकाकुल और बाल बिखरे)

मेरीना—मैंने कैसा भीषण पाप किया है! सारे यहूदियों के धर्मपिता की हत्या करायी है! ओह! जिस समय मुझे वृद्ध धर्म-पिता का ध्यान आता है—जान पड़ता है—वह सामने खड़े हैं और मेरी भर्त्सना कर रहे हैं! (कुछ सोचकर) यह सब मैंने किसके लिये किया है? उसी पापिनी के लिये? हे प्रभो! क्या मेरे लिये यही माता थी?—ठीक ही तो है जैसी मैं, वैसी ही मेरी माँ। ओह! इतना भीषण अन्त? साम्राज्ञी हेरोदिया—महारानी हेरोदिया—बर्बर डाकू के हाथों से मारी गयी!! सम्राट की अनन्त सेना उस समय कहाँ थी? पाप का इतना भीषण दण्ड? ऐसी ही मेरी भी गति होगी! मैं इस प्रकार क्यों मरूँ? अपमान द्वारा मरने से तो आत्महत्या कहीं अच्छी है। हाँ—बहुत अच्छी! बस—यह नदी ही उपयुक्त स्थान है। मैं अब इसी की शीतल गोद मे विश्राम करूँगी। बस......

(नदी में पैठती है—कुछ दूर जाकर रुकती है)

मेरीना—मरूँ? डूब कर? नहीं। बड़ा कष्ट होगा! पर, यदि

किसी अन्य प्रकार से अपने पापो का प्रायश्चित्त करना पड़ा तो ? और यदि वह प्रकार इससे भी भीषण हुआ तो ? मै जरूर मरूँगी। (आगे बढ़ती है) पिता! मुझे क्षमा करो! मै पश्चात्ताप करती हूँ। (मेरीना डूबना चाहती है। इतने में स्टिफ़ेन झपटा आता है और उसका हाथ पकड़ कर बाहर निकालना चाहता है)

स्टिफेन—बस! हो चुका। मेरीना! तुम्हारे पापों का प्रायश्चित्त हो चुका।

मेरी०—नहीं! मुझे न रोको! न रोको!! छोड़ दो!!!

स्टिफेन—(मेरीना को बाहर लाकर) शान्त हो! राजपुत्री!

मेरीना—आप कौन है जो मुझ अनाथ को मरने से भी रोकते है ? अब मेरा कौन है जिसके लिये मै जीऊँ ? पिता मेरे जन्मते ही मर गये, माता अपने पापो का प्रायश्चित्त करने चली गयी—अब मुझे भी जाने दीजिये! मै पापी हेरोद के आश्रय मे अब एक क्षण भी नहीं रह सकती।

स्टिफेन—उसके यहाँ नहीं रह सकती, तो तुम मेरे घर पर चल कर रहो। उसे अपना ही समझो। मेरीना, आत्महत्या में शान्ति नहीं। भूल कर भी ऐसा काम न करना। ऐसा करना घोर पाप है!! हमारे प्राण, परमात्मा की पवित्र धरोहर—इन्हें इस प्रकार गँवा देने से उसके सामने अपराधी बनना पड़ेगा—आओ!

द्वादश दृश्य

स्थान—सड़क । समय—दोपहर

(शान्ति गाती हुई जा रही है)

गाना

जगत के देव दुःखी समुदाय
आशीर्वाद वही दे सकते शाप उन्हीं को—'हाय !'
जो परलोक बनाना चाहे करले एक उपाय,
जप, तप, ध्यान, योग से पहले दीन बन्धु बन जाय !
रोगी, दुखी, अपाहिज, कोढ़ी को निज कण्ठ लगाय
कर सेवा सब दुःख हर ले रे मीठे बचन सुनाय !

(शिकारी वेश में शावेल का प्रवेश)

शान्ति—महाशय ! क्या युरोशलीम का यही रास्ता है ?

शावेल—सुन्दरी ! तुम कौन हो ? युरोशलीम में किस भाग्य-वान के घर पर जा रही हो ?

शान्ति—मुझे पता लगा है कि युरोशलीम के दक्षिण भाग मे कोई कोढ़ी, अनाथ मर रहा है। मै उसी की खोज में जा रही हूँ।

शावेल—उससे मिल कर क्या करोगी ?

शान्ति—यथाशक्ति सेवा-सुश्रूषा करूँगी। विलम्ब हो रहा है। आप कृपाकर मार्ग बता दीजिये—बड़ा उपकार होगा।

शावेल—सुन्दरी! तुम्हारा यह रूप! अद्वितीय है! मैंने रूप का इतना बड़ा धनी अपने जीवन में कभी नहीं देखा। हाय! तुम्हारे ये कोमल-पद कंटकों के आघात से रक्त-मय हो गये हैं। आज्ञा हो तो मैं सवारी का प्रबन्ध करूँ!

शान्ति—इस कृपा के लिये आपको हार्दिक धन्यवाद! मैं पैदल ही चली जाऊँगी। सेविकाओं को सवारी शोभा नहीं देती। आप मुझे राह बताइये।

शावेल—जाओगी? ओह! तुम बड़ी ही सुन्दरी हो! मैं तुम्हें अकेले नहीं जाने दूँगा। प्यारी—'

शान्ति—(सखेद) आप कहाँ के रहने वाले हैं? क्या आपके देश की यही सभ्यता है कि निर्जन स्थान में पाकर किसी भद्र महिला का अपमान किया जाय? कृपा कीजिये! मैं अपना पथ स्वयं खोज लूँगी।

(जाना चाहती है)

शावेल—(रोककर) ठहरो! अनर्थ न करो हृदयेश्वरी, मैं सम्राट हेरोद का सेनापति—तुम्हारे पैरों पर पड़ता हूँ। एक बार मेरी ओर सरस दृष्टि से देखकर मुझे कृतार्थ कर दो! रीझो! मेरी रानी!

(रास्ता रोक लेता है)

शान्ति—मार्ग छोड़ दे चाण्डाल! तू हेरोद का सेनापति है? धिक्कार है तेरे पद को! (आगे बढ़ती है)

शावेल—(हाथ पकड़ कर) प्रिये! कहाँ जाती हो? तिरस्कार न करो! हृदयेश्वरी! प्यारी!! आओ तुम्हें हृदय में छिपा लूं। जाओ मत!

शान्ति—(धक्का देकर उसे गिरा देती है और उसकी छाती पर अपनी कटार तानकर चढ़ बैठती है) ले! छिपा लें! इस कटार को छिपा ले चाण्डाल!! जानता नहीं, इस शरीर का रक्त पुण्य-भूमि भारत के अन्न-जल से बना है! भोंक दूँ? पापी!!!

शावेल—(काँपकर) माँ! क्ष...मा. !

(ईसा का प्रवेश)

ईसा—जाने दो! शांति, नरक के कीड़े को मारकर अपना पवित्र कर अपवित्र न करो? इसे छोड़ दो! इसके पापों का प्रायश्चित्त इससे भी भीषण होगा। आओ, मैं तुम्हें मार्ग बतलाता हूँ—धन्य देवि!!

(पटाक्षेप)

महात्मा ईसा

नाटक

तृतीय अंक

प्रथम दृश्य

स्थान—हेरोद का महल। समय—दोपहर

(हेरोद और शावेल)

हेरो०—हमारे आकाश की तरह स्वच्छ साम्राज्य पर ईसा ने पहले तो एक छोटे से बादल के टुकड़े के रूप मे अपना आंदोलन आरम्भ किया—परन्तु अब वही टुकड़ा सारे आसमान पर अधिकार जमाना चाहता है। हमारे सुख समुद्र की लहरें अपनी मौज से क्षण-क्षण पर आगे को ही बढ़ी जा रही थीं—पर अब उनकी गति के विरुद्ध इस ढोंगी धर्मात्मा ने ईसाई नामी मिथ्या-धर्म की डोंगी डाल दी है! उसे यह नहीं मालूम है कि सम्राट के विरुद्ध किसी का भी आन्दोलन नहीं चल सकता है। जिस समय मेरे दमन का झंझावात चलेगा—उसी समय सब रसातल को चला जायगा। क्यो जी शावेल ?

शावेल—आज्ञा धर्मावतार!

हेरो०—रानी हेरोदिया की हत्या किसने की ?

शावेल—यहूदिया देश के प्रसिद्ध डाकू बरब्बा ने—महाराज! वह कहता है कि मैंने महारानी को मार कर योहन भविष्यद्वक्ता की हत्या का बदला लिया है।

हेरो०—बदला!—योहन की हत्या का प्रतिशोध ले एक जंगली डाकू! इसका अर्थ मै खूब समझता हूँ शावेल, ईसा और उसके शिष्यो के प्रचार का ही यह परिणाम है।

शावेल—सम्राट को इस आंदोलन को शीघ्र रोक देना चाहिये—नही तो फिर कुछ भी करते-धरते न बनेगा। गुप्तचरों से पता लगता है कि ईसा और ईसाइयो के भाषणो का जनता के ऊपर विचित्र प्रभाव पड़ता है। जिस समय ईसा पददलित जनता की, उत्तेजक शब्दो मे, भर्त्सना करने लगता है उस समय बूढ़ो की नसो मे लोहू दौड़ने लगता है, जवान छाती फुला-फुलाकर अपने इधर-उधर बैठे हुए अधिकारियो को क्रोधभरी दृष्टि से देखने लगते है, औरते रो पड़ती है तथा लड़के 'महात्मा ईसा की जय!' बोल उठते है। मानो वही यहूदिया का सम्राट है!

हेरो०—ऐसी सभाये होता कहाँ पर है? श्रोता कितने जुटते है?

शावेल—महाराज कुछ न पूछिये। उसका प्रत्येक काम आश्चर्य-पूर्ण होता है। सभाये होती हैं पहाड़ों की तराइयों मे—ऊसर मैदानो मे तथा नदियो के तटो पर। इनमे बैठने के लिये आसन होती है पृथ्वी, प्रकाश होता है सूर्य या चन्द्रमा और श्रोताओ की संख्या हजारो से लेकर लाखों तक होती है। दूर-दूर के ग्रामीण इस ढोंगी महात्मा के दर्शनो को आते है।

हेरो०—चुप रहो ! इन सब बातों के सुनने से मुझे ज्वर चढ़ आता है। यह तुम्हीं लोगो की ढिलाई का तो परिणाम है।

शावेल—महाराज !......

हेरो०—सुनो ! नगर के महन्तों, अध्यापको और याजकों के पास यह सूचना भेज दो कि वे ईसा की सभाओं में अपने दल के साथ जाया करे और उससे तर्क-वितर्क करके जनता के ऊपर से उसका प्रभाव हटाने की चेष्टा करे। इसके लिये उन्हे राजकीय-कोप से पुरस्कार दिया जायगा।

शावेल—साधु ! साधु !!

हेरो०—स्थान-स्थान पर हमारे अनुयायियो की सभायें हो जिनमे ईसा के सिद्धान्तो का खण्डन किया जाय —उसे नास्तिक, राजविद्रोही और धूर्त सिद्ध किया जाय तथा उसके अनुयायियों पर दबाव डालने का प्रबन्ध किया जाय। इस समय युरोशलीम मे उसके कितने अनुयायी होंगे ?

शावेल—जहाँ तक मै समझता हूँ एक चौथाई युरोशलीम उसका भक्त है। यहाँ पर तो कुछ भी नही है। अन्य प्रान्तों में नगर का नगर उसे पूजता है।

हेरो०—एक चौथाई युरोशलीम उसका भक्त है और तुम उसे 'कुछ नहीं' कहते हो ! अभी इस आन्दोलन के उठे ही कितने दिन हुए ?—देखो, नगर के रक्षक सैनिको को उभाड़ दो कि वे उसके हिमायतियो को तंग किया करें—गुप्तचरों को भी यही आज्ञा दे दो !

शावेल—बहुत अच्छा—स्वामी !

हेरो०—जहाँ कहीं भी लड़के उसकी 'जय' पुकारते पाये जायँ—खूब पीटे जायँ। हाँ जी, उस बात का कोई प्रबन्ध हुआ ?

शावेल—किसका सरकार !

हेरो०—मैंने तुमसे उसके किसी शिष्य को फोड़ने को कहा था न ? इतनी जल्दी भूल गये !

शावेल—भूल कैसे सकता हूँ महाराज, मैंने उसका प्रबध किया है। एक को आज बुलाया है। सम्भवतः वह आता ही होगा।

(द्वारपाल का प्रवेश)

हेरो०—क्या है ?

द्वार०—(सलाम करके) अन्नदाता बाहर एक ईसाई खड़ा है, वह सेनापति जी से मिलना चाहता है।

शावेल—(हेरोद से) वही जान पड़ता है, महाराज ! आप उसे यहीं बुला लें।

हेरो०—उसे यहीं पर लाओ !

(द्वारपाल का प्रस्थान)

हेरो०—शावेल ! देखना फन्दे से निकलने न पावे। चाहे जैसे हो मिलाना उसे।

(द्वारपाल और यहूदा इस्केरियत का प्रवेश)

शावेल—आइये ! आइये ! यहूदा जी ! अभी आप की ही चर्चा चल रही थी। (हेरोद से) महाराज ! आप सम्राट और

साम्राज्य के बड़े ही भक्त है। लेकिन न जाने क्या मंत्र डालकर उस ढोंगी ने इन्हे भी अपने दल में मिला लिया है।

हेरो०—अच्छा ही किया है। इससे तो अपना लाभ ही है। ईसा के साथ रहकर आप साम्राज्य की अधिक सेवा कर सकेंगे।

शावेल—सो कैसे महाराज ?

हेरो०—उसकी जो-जो मंत्रणाएँ हमारे विरुद्ध होंगी उनकी सूचना हमे दिया करेंगे—क्यो महाशय ! आप तो ईसा के बारह मुख्य शिष्यो मे से है न ?

यहूदा—जी हॉ महाराज !

हेरो०—अहा ! यह तो निहायत अच्छी बात हुई। मै आपसे मिलकर बड़ा ही प्रसन्न हुआ।

शावेल—सम्राट उसे कब गिरफ्तार करेंगे ?

यहूदा—क्या महात्मा ईसा गिरफ्तार भी किये जायेंगे ?

हेरो०—नहीं। अभी इसकी कोई आवश्यकता नहीं है। जब तक उसके आन्दोलन से शान्ति-भङ्ग न होगी तब तक हमारी सरकार उसे हर तरह की स्वतंत्रता देगी। शान्ति-भङ्ग होने ही पर हमे आपकी सहायता आवश्यक होगी और उस समय उसे गिरफ्तार करने पर आपको पूरा पुरस्कार दिया जायगा। कहिये ! आप मेरे विचार से सहमत हैं न ?

यहूदा—(चुप)

शावेल—सहमत क्यों न होंगे ? भला यहूदियों के सर्व शक्तिमान सम्राट से कौन असहमत होगा !

यहूदा—इस समय मुझे आज्ञा हो—मैं इस विषय पर विचार कर उत्तर दूँगा।

हेरो०—बहुत अच्छा—आप भली भाँति विचार लें, इस काम मे पुण्य और लाभ दोनों ही हैं—शावेल ! आपको पहुँचा आओ ! (प्रणाम करके यहूदा और शावेल जाते हैं।)

हेरो०—अब यह अपनी मुट्ठी से बाहर न जा सकेगा। मैंने देखते ही इसे पहचान लिया ! अज्ञानी दरिद्र अथवा खर्चीले बुद्धिमान के लिये स्वर्ण-मुद्रा ही वशीकरण मंत्र है।

द्वितीय दृश्य

स्थान—बाज़ार । समय—तीसरा पहर

लड़कों का एक दल हाथ में झंडियाँ लिये गाते हुए दिखाई पड़ता है)

ग़ज़ल

चुप रहे, कुछ न कहे हमको डराने वाले
अब तो खामोश रहे शान दिखाने वाले !
हमने सीखा है सबक मरने का इससे हँसकर
इम्तेहाँ लेंगे कभी जुल्म के ढाने वाले !
सर पै पड़ जायेंगे—पड़ जायँगे कहते सच हैं,
धूल समझें न हमें रौंद के जाने वाले !
मुल्क पर अपने जो मरते हैं अमर होते हैं
मुर्दे झखमार हैं तलवार चलाने वाले !

एक—महात्मा ईसा की जय !

सब—महात्मा ईसा की जय !

एक—अहा ! भाई, जान पड़ता है महात्मा ईसा कोई अवतार है। उनके दर्शनों में आकर्षण, बातों में जादू और उनके काम में निर्भयता कूट-कूट कर भरी है ।

दूसरा—ओह ! उस दिन की सभा में मैंने उन्हें देखा था ।

उनके मुख पर ऐसा तेज था कि आँखें नहीं टिकती थीं—जान पड़ा—कोई देवता खड़ा है।

तीसरा—भैया, मुझे अभी उनके दर्शनों का सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ है। उस दिन की सभा मे उन्होने लोगो को किस बात का उपदेश दिया था ?

दूसरा—उस दिन जो कुछ उन्होने कहा था, उसका सारांश यही है कि मनुष्य को मनुष्य के डर से अपनी आत्मा का अपमान कदापि न करना चाहिये। उसे एक परमात्मा को छोड़कर और किसी से भी डरना न चाहिये—अपने शत्रु के ऊपर भी दया करनी चाहिये और सत्य का आग्रही होना चाहिये।

पहला—धन्य...महात्मा ईसा!

दूसरा—भाई, उन्होंने हमारे सम्राट की जिस निर्भयता से समालोचना की—उसे देखकर कितने लोग दंग रह गये! क्या सचमुच सम्राट का आचरण अच्छा नहीं है?

चौथा—तुम्हें इतना भी नहीं मालूम है। हमारा सम्राट बहुत ही खराब आदमी है। पिता जी कहते थे कि उसने अकारण ही हमारे धर्मपिता को मरवा डाला है। अहा! धर्मपिता कितने सज्जन पुरुष थे—मुझे देखते ही गोद मे उठा लेते थे!

पहला—अरे उधर तो देखो! सैनिको के साथ कौन आ रहा है ?

दूसरा—आने दो—महात्मा ईसा की जय!

सब—बोलो महात्मा ईसा की जय !

(सिपाहियों के साथ शावेल का प्रवेश)

शावेल—क्यों जी तुमने आसमान को सर पर क्यो उठा रखा है ?? भागो यहाँ से नहीं तो .....!

एक—हम तुम्हारा क्या बिगाड़ रहे हैं ? अपने महात्मा की हम तो जय मना रहे है—जानते हो...वह बहुत अच्छे आदमी है—तुम भी उनकी जयकार मनाओ, ईश्वर प्रसन्न होगा बोलो...!

सब—महात्मा ईसा की जय !

शावेल—सिपाहियो ! भगा दो इनको ! लगाओ ! दो-दो धौल !!

सिपाही—भागो जी ! चलो !! हटो !!! (धक्का देते हैं)

एक ल०—ऐसी बात है। तब तो हम नहीं हटते—वाह ! इसका क्या अर्थ है ? हमलोग कुछ बोल भी नही सकते ! यह खूब रही !—बोलो जी—महात्मा ईसा की जय !!

सब—महात्मा ईसा की जय !

शावेल—तुम सब न मानोगे ? अच्छा जी इस पाजी को पकड़ तो लो। (सिपाही एक लड़के को पकड़ते हैं)

सब—हमें भी पकड़ो ! एक ही को पकड़ कर क्या करोगे—बोलो महात्मा...

शावेल—दो सिपाही इसका एक-एक हाथ पकड़े और दो इसकी पीठ पर कोड़े लगायें—देखूँ तो कैसे जय बोलता है।

गिरफ्तार हुआ ल०—हम जय अवश्य बोलेंगे—तुम मारो। बोलो महात्मा ईसा की जय!

सब—महात्मा ईसा की जय!

(सिपाही लड़के को कोड़े मारते हैं; बालक प्रत्येक प्रहार पर जय बोलता जाता है! एक स्त्री का प्रवेश—)

स्त्री—हाय रे! मेरा बच्चा मर जायगा! मारो मत—इसे छोड़ दो! जाने दो! (लड़के के पास जाकर बचाना चाहती है)

शावेल—धकेल दो इस डायन को—क्यों रे यह तेरा ही लड़का है?

स्त्री—हाँ महाशय। मै ही इसकी माँ हूँ—इसे छोड़ दीजिये।

शावेल—तूने इसे क्या सिखा रखा है?

लड़का—सिखा रखा है—'महात्मा ईसा की जय!' मारो। मारते क्यों नहीं?

शावेल—सुनती है? मै सब समझता हूँ यह तेरी ही शैतानी है—छुरा कहाँ है—तेरा?

स्त्री—छुरा? मैंने तो आजतक कभी अपने पास छुरा नहीं रखा!

शावेल—हूँ—सो तो मै खूब जानता हूँ। मैंने एक ईसाई औरत से इस बात की सचाई जाँची थी—अब तेरी भलाई इसी मे है कि अपना छुरा निकाल कर रख दे। रुक क्यों गये जी? मारो बदमाश को।

लड़का—मारो ! महात्मा ईसा की जय ।

(लड़का बेहोश होकर गिर पड़ता है)।

शावेल—इसे होश मे लाकर फिर मारो ।। (औरत से)—

स्त्री—छोड़ दो बाबा । ईश्वर के लिये मुझ ग़रीब की औलाद को न मारो । मेरे पास छुरा-उरा कुछ भी नहीं है—मेरी तलाशी ले लो ।

शावेल—जाँच लूँ—अच्छा । सिपाहियो । इसके कपड़े उतारकर तलाशी तो लो !

एक सिपाही—प्रभो, औरत के कपड़े .....

शावेल—चुप रहो ! जो कहता हूँ—करो । इसके कपड़े उतार लो । (दो सिपाही स्त्री के कपड़े उतारने को हाथ बढ़ाते हैं)

स्त्री—दूर हटो राक्षसो । सावधान । शरीर—न छूना ।

शावेल—उतार लो कपड़े—चिल्लाने दो इसे...।

(सिपाही कपड़े उतारना चाहते हैं)

स्त्री—नहीं मानोगे—हाय । मेरी लज्जा...परमात्मा . दयामय मेरी इज्ज़त बचाओ...प्रभो ।

शावेल—जल्दी से उतार लो ।

(सिपाही स्त्री के कपड़े विकृत कर देते हैं—मेरीना का प्रवेश)

मेरीना—शावेल ! तुम्हे शर्म नहीं आती ! इस प्रकार बीच बाजार मे अबला औरत का अपमान कर रहे हो ! धिक्कार है !! (सिपाहियो से) हटो जी—छोड़ दो ।। (सिपाही हट जाते हैं),

स्त्री—(मेरीना के पैर पकड़ कर) . बचाओ! देवी मेरी लज्जा बचाओ...यह राक्षस मेरे लाल को खा जायगा...उसको भी बचाओ!

मेरीना—डरो मत...अब किसी बात का भय नहीं। चलो तुम मेरे साथ चलो!

शावेल—राजपुत्री! सम्राट की आज्ञा मे दख्ल देने का आप को कोई भी अधिकार नहीं है।

मेरीना—चुप रहो—शावेल! तुम्हारा सम्राट तो पशु हो गया है। भला ईसा की जय बोलने मे क्या हानि है? खबरदार! आज से किसी महिला पर हाथ न उठाना...चलो माँ!

लड़का—(होश में आकर)—यह कौन हैं माँ?

मेरीना—भैया! पहले इन राक्षसो से दूर भाग चलो—फिर मेरा परिचय पूछना—(सब लड़कों से) चलो! तुम भी चलो—और किसकी जय बोलते थे बोलो!

सब—महात्मा ईसा की जय!

(शावेल और सिपाहियों को छोड़कर सब का प्रस्थान)

शावेल—आज ही इसका निबटारा करूँगा। राजपुत्री को इस बीच मे कूदने की क्या आवश्यकता थी? चलूँ—सम्राट ही से उनकी लड़ैती की कथा कहूँ—ऐसी सिरचढ़ी लड़की...मेरी होती तो खून पी लेता...चलो जी! (प्रस्थान)

तृतीय दृश्य

स्थान—जंगल। समय—दोपहर

(ईसा और शिष्यगण)

ईसा—दुर्बलों की क्षीण दोहाई अत्याचार की अग्नि में घी का काम देती है। जैसे दहकती हुई आग थोड़ा जल पाने से और भी प्रचण्ड रूप धारण कर लेती है, वैसे ही दुखियों के अश्रु से अत्याचारियो की क्रोधाग्नि भी भभक उठती है।

पीटर—प्रभो, देश की स्थिति दिनो दिन जटिल हुई जा रही है। जिस प्रकार से अत्याचारियो का आतक बढ़ रहा है, उसे देखकर कभी-कभी हमे निराशा होने लगती है।

ईसा—फिर वही निराशा ? पीटर! निराशा का स्मरण भी करोगे तो धोका खाओगे। विजय तुम्हे अवश्य मिलेगी परन्तु इस निराशा से सदा दूर रहना। नहीं तो, यह मिली हुई विजय को भी क्षणमात्र मे पराजय कर सकती है। सत्य—सदा सत्य ही रहा है और रहेगा—तुमने देखा नहीं है ? काले बादल सर तोड़ कर यह प्रयत्न करते हैं कि लोग दिन को रात समझ ले परन्तु क्या कभी उन्हे सफलता मिली है ?

फिलिप—सो तो ठीक है प्रभो! परन्तु इन सत्ताधारी यहूदियो का हृदय काले बादलो से भी काला, वज्र से भी कठिन तथा

मृत्यु से भी भयंकर है। ऐसों के साथ दया-भाव रखने से बड़ी कठिनता पड़ती है। इन्हें तो बात का उत्तर लात से, और हाथ का तलवार से देना चाहिये।

ईसा—कदापि नहीं फिलिप! यह तुम्हारी मिथ्या धारणा है। पशु-बल को यदि पशु-बल दबायेगा तो वह महा पशु-बल हो जायगा जिससे किसी को भी सुख न मिल सकेगा। अत्याचार के प्रतीकार के लिये धैर्य, आत्म-दमन और अहिंसा ही सर्वश्रेष्ठ साधन हैं—अस्तु, यदि कोई तुम्हारे एक कपोल पर प्रहार करे, तो उसके सम्मुख हँसकर दूसरा गाल भी कर देना, तुम देखोगे विजय तुम्हारी होगी। फिर वह, तुम्हे मारने के लिये हाथ न उठा सकेगा।

एण्ड्रू—प्रभो! इस संग्राम का अन्त कब होगा?

ईसा—हमारे अन्त के बाद। एण्ड्रू! धर्म, यश, स्वतन्त्रतादि बातों से नहीं मिलते, उनका मूल्य प्राणों से चुकाना पड़ता है।

एण्ड्रू—यदि हमारे प्राणों पर ही विजय निश्चित है, तो हम आज ही मरने को तैयार है। परन्तु यदि मरने पर भी देश मे शान्ति न हुई—अत्याचार न रुका—सत्ताधारियों के सिर न झुके तो? हमारी संतानों की क्या गति होगी? हम कैसे विश्वास कर लें कि उस समय पिता का परिशोध पुत्र से और भाई का बदला भाई से न लिया जायगा?

ईसा—जहाँ पर किसी पवित्र-हृदय वाले प्राणी का एक बूँद रक्त गिरता है, वहाँ पर एक सहस्र—और आवश्यकता पर उससे

भी अधिक—प्राणी उसके स्थान की पूर्ति के लिए—उसकी सहायता के लिये तैयार हो जाते हैं। संसार के इतिहास इसके साक्षी हैं—एण्ड्रू! तुम्हारे मरने पर तुम्हारे लड़के भी तुम्हारी ही तरह मरने को तैयार हो जायँगे और उनकी सहायता के लिये उनके ऐसे सहस्रो उनके पीछे चलेंगे।

याकूब—प्रभो! अभी देश की जनता बहुत ही स्वार्थी है। कहीं-कही पर हमारा ऐसा अपमान होता है जिसके स्मरण मात्र से हमे दु:खी होना पड़ता है। हम जिसके लिये अपने प्राण हथेलियों पर लिये फिरते हैं—वे ही हेरोद के डर अथवा स्वार्थ से हमारी ओर देखते भी नहीं—हमे पानी को भी नहीं पूछते!

ईसा—इसमे मुझे जनता का तो कोई भी दोष दिखायी नही पड़ता है। दोष तो तुम्हारा है जो लोगो के पास प्रतिष्ठा पाने के विचार से जाते हो। क्या समझते हो कि जनता को जागृत कर तुम उन्हें अपना ऋणी बना रहे हो? ऐसा स्वप्न मे भी न सोचना। तुम स्वत: उनके ऋणी थे—उसी को भर रहे हो, अपना कर्त्तव्य-पालन कर रहे हो, परलोक बना रहे हो। फिर उन्हे क्या पड़ी है जो तुम्हें पानी को पूछें! जो कोई तुम्हारी प्रशंसा करे और जलपान को पूछे, समझना कि वह तुम्हारे ऊपर और भी ऋण लाद रहा है।

फ़िलिप—महाराज! पूँजीपति और पृथ्वीपति तो हम से इतने विमुख रहते हैं जितना ३-६ से।

ईसा—वह तो रहेंगे ही—पर इसे तुम याद रखना ! भले ही सूर्य पश्चिम से उदित होकर पूर्व मे अस्त होने लगे, चीटी समुद्र पार कर जाय, सूई के छिद्र से ऊँट निकल जाय परन्तु इन पूँजी-पतियो और पृथ्वीपतियो को स्वर्ग मे स्थान नहीं मिल सकता। जिसकी सम्पत्ति यहाँ पर है वह वहाँ पर तब तक दरिद्र रहेगा जब तक यहाँ की सम्पत्ति दरिद्रो के हाथ से वहाँ पहुँचा न दी जाय।

पीटर—प्रभो ! अब आगे का कार्यक्रम निश्चित कर लीजिये। हमे क्या-क्या करना होगा।

ईसा—पीटर ! इस समय हमारा पहला कर्त्तव्य है युरोशलीम चलना। वहाँ के अत्याचारो को सुनकर मेरा हृदय टीस रहा है।

पीटर—परन्तु महाराज ! वहाँ पर आपकी रक्षा कदापि संभव नहीं है। न जाने कब से हेरोद आपको पकड़ने की राह देख रहा है।

ईसा—इसकी चिन्ता छोड़ो। हमारे आन्दोलन का पूर्वार्द्ध समाप्त हो गया है। अब उत्तरार्द्ध का आरंभ युरोशलीम ही से होगा और पहली घटना होगी मेरी हत्या !

फिलिप—यह आप क्या कहते है प्रभो !

ईसा—जो कहता हूँ, बिल्कुल ठीक कहता हूँ। इसमे कोई चिन्ता की बात नहीं है ! अब पापियों का अस्त और धार्मिको का उदयकाल सन्निकट है। कल युरोशलीम अवश्य चलना होगा। समझे...!

चतुर्थ दृश्य

स्थान—धर्म-मंदिर। समय—सायं

(एलाज़र और डेविड बैठे शराब पी रहे हैं, सुन्दरियाँ गा रही हैं)

गाना

(थियेट्रिकल)

प्यारी प्यारी बतियाँ प्यारी—

रस भरी अखियाँ प्यारी

मेरे मन को लुभा ले गयी साजना!

साजना!! प्यारी०—

भेजे न पतियाँ पिया!

कटें ना रतियाँ पिया!

बतियाँ ही बनाते गये साजना!

साजना!! प्यारी०—

एला०—अहा हा! खूब गाया डेविड! तुम भी कहो!

डेविड—मैं—क्या कहूँ?

एला०—यही कि—'खूब गाया!' ऐसा कहकर तुम मुझसे सहानुभूति प्रकट कर सकते हो और पुरस्कार स्वरूप मेरी कृपा पा सकते हो।

डेविड—सचमुच इनका स्वर बहुत मीठा है और इनका गाना स्वर्गीय है।

एला०—उँहुँक...! ऐसे नही। ठीक वैसे ही...उन्हीं शब्दो मे कहो, जैसे, जिन शब्दो मे मैंने कहा था।

डेविड—नही साहब! वैसे तो मुझसे नहीं कहा जायगा!

एला०—भाई मेरे! पहले थोड़ी शराब पी लो, फिर देखो, कहा जाता है कि नहीं। तुम नही जानते यह एक विद्या है।

डेविड—विद्या?

एला०—हाँ जी बहुत अच्छी विद्या। इसी से मैंने हेरोदिया को अपनाया था, इसी से बरब्बा को वश मे किये हूँ और इसी से हेरोद को चुटकी पर नचाता हूँ। जानते हो यह कौन सी विद्या है?

डेविड—जानता होता तो मै भी किसी सम्राट को वश मे न रखता? हाँ, बतलाइये वह कौन सी विद्या है?

एला०—बताऊँ?—नहीं। मुफ्त मे कैसे—कुछ गुरुदक्षिणा सामने रक्खो तो अभी-अभी बतला—सिखला दूँ।

डेविड—यह बात है, तब जाने दीजिये। मै ऐसी विद्या नहीं सीखना चाहता।

एला०—वाह, भाई, वाह! सीख क्यो नही लेते? भला इस चापलूसी के सीखने मे तुम्हारा क्या लगता है? (जीभ दबाकर च...च...करता है) धत्तेरी की! मैंने उस विद्या का नाम ही बतला दिया। अच्छा देखो गुरुदक्षिणा देना न भूलना!

डेविड—धन्य हैं महानुभाव! अभी तक आप जिस विद्या के बताने की भूमिका बाँध रहे थे उसका नाम 'चापलूसी' ही है? ख़ैर जब बतलाते ही हैं तो अच्छी तरह बतलाइये। किन साधनों से चापलूसी सधती है?

एला०—इस विद्या को अन्य आचार्यों ने बड़ा ही कठिन कहा है परन्तु मैंने जो इसका सार निकाल लिया है वह है—कुछ शब्दों को दोहरा भर देना।

डेविड—कैसे?

एला०—जैसे हेरोद ने मुझसे कहा—'शराब पीना बहुत ही अच्छा काम है!' बस, चटपट, मैंने भी उसके वाक्य का अन्तिम अंश 'बहुत ही अच्छा काम है' को 'श्रीमान्' जोड़कर दुहरा दिया—और बाज़ी मार ली!

डेविड—वाह—साहब! वाह!

एला०—एक दिन तो उसने मेरी परीक्षा भी ली—पर वाह रे मैं! बड़ी ही सफलता के साथ उत्तीर्ण हुआ।

डेविड—कैसी परीक्षा ली महाशय! मैं भी सुनूँ...

एला०—'बातो ही बातों में उसने कह दिया—'एलाज़र बड़ा भारी गधा है!' मैंने भी फ़ौरन ही तो उत्तर दिया—'बड़ा भारी गधा सरकार है' यह सुनकर वह इतना प्रसन्न हुआ कि एक नौकर को बुलाकर मुझे प्रासाद के बाहर पहुँचा आने को कह

है कि सुन्दर लोगो के पास हृदय ही नही होता। और यदि होता है भी तो अत्यन्त असुन्दर।

एला०—अहँ! यह कोई बड़ा दोष नही है।

डेविड—दूसरा सुनिये—सौन्दर्य लोगो को विक्षिप्त कर देता है—उनमे न्यायान्याय का विचार ही नहीं रहने देता।

एला०—यह दोष भी कुछ नहीं के बराबर है।

डेविड—ऐहिक-सौन्दर्य स्थायी नही होता।

एला०—अजी जिन्हें तुम गिना रहे हो उन्हे दोषों की श्रेणी मे नही रक्खा जा सकता है। सौन्दर्य का मुख्य दोष तो मैं ही जानता हूँ—

डेविड—अच्छा तो बताइये क्या है?

एला०—सौन्दर्य मे मुख्य दोष यही है कि वह खाया नहीं जा सकता! एक दिन मुझसे किसी कवि महाशय ने कहा कि रूप सुधा सा मीठा होता है। बस, इतना सुनते ही मैं, महारानी हेरोदिया के यहाँ पहुँचा। क्योकि उनका रूप अद्वितीय था। प्रायः आध घण्टे तक मै उनकी छवि एक टक देखता रहा—बीसों बार जीभ से ओंठ भी चाटे, पर अमृत की कौन कहे गुड़ की मिठास भी न मिली!

डेविड—(हाथ जोड और मुँह बनाकर) धन्य हो प्रभु—ह ह ह!

एला०—अरे भैया! यह तो कहो महारानी को दया आगई—

उन्होंने मुझे भूखा जानकर भोजन मँगा दिया। मैंने भी सोचा चलो, यदि सौन्दर्य खाया नहीं जाता तो क्या उसकी कृपा से भोजन तो मिल जाता है! परन्तु यदि सौन्दर्य भोजनीय होता—आहा! ये लाल-लाल ओठ! (एक वेश्या से) सुन्दरी! ज़रा एक प्याला और तो भरो!

(ईसा का शिष्यों के साथ प्रवेश)

ईसा—(एलाज़र से) बस करो! अब तुम्हारी नीचता सीमा पार कर गई—क्यों जी, यह धर्म-मंदिर है? इसे तुम ईश्वर का निवास-स्थान कहते हो? परम-पिता के घर मे वेश्याओं के हाथ से शराब पीते हुए तुम्हे लज्जा नही आती? धिक्कार है!

एला०—तुम कौन होते हो जी? तुम यहाँ आये कैसे? बड़े धर्मात्मा के अवतार बने हैं!

पीटर—चुप रह! अधम! निकल मंदिर के बाहर! फेक दो जी इन सब अपवित्र वस्तुओं को। इसे गर्दनियाँ देकर बाहर निकालो!

(कई आदमी एलाज़र और वेश्याओं को बाहर कर देते हैं)

ईसा—पीटर! ऐसा उग्र रूप धारण करने की कोई आवश्यकता नही—जाओ, बाहर बहुत से दर्शनाभिलाषी खड़े हैं उन्हे भीतर आने दो!

पंचम दृश्य

स्थान—हेरोद का प्रासाद। समय दोपहर

(हेरोद विचारमग्न)

हेरो०—कैसा विचित्र आदमी है ! इसके आन्दोलन के सामने हमारा दमन पंगु—प्राणहीन जान पड़ता है। वह लड़ता तो है पर उसकी लड़ायी कोई देख नहीं सकता। लोग तलवार से साम्राज्य की जितनी हानि कर सकते हैं उससे कहीं अधिक हानि बिना शस्त्र धारण किये ही ईसा कर रहा है।—महात्मा ईसा ! गलियो मे, बाजारो में, नगरों में, ग्रामों मे—जहाँ देखो वहीं महात्मा ईसा ! इस समय जनता का सर्वस्व यह ढोंगी महात्मा ही बना हुआ है। हेरोद कोई है ही नहीं ! हेरोद कुछ भी नहीं है ? दरिद्र ईसा के सामने सम्राट हेरोद कुछ भी नहीं है...!

(गुप्तचर का प्रवेश)

हेरो०—क्या समाचार है जी ?

गु० च०—प्रभो ! हमने ईसा को युरोशलीम नगर मे घुसते हुए देखा है।

हेरो०—वह युरोशलीम में आ गया ! उसके साथ और कौन है ?

गु० च०—जिस समय मैंने देखा—उसके साथ लाखों की संख्या में इस नगर की जनता आ रही थी। वह एक गधी के बच्चे पर सवार था। लोग "महात्मा ईसा की जय" की गगन-भेदी ध्वनि से पृथ्वी को हिला रहे थे।

हेरो०—इस समय वह कहाँ पर होगा?

गु० च०—सो तो ठीक नहीं कह सकता। मैंने अपने अन्य साथियों को उसके पीछे लगा दिया है। वे बारी-बारी से आपको उसका समाचार देते रहेंगे। मैं भी पुनः जाता हूँ।

हेरो०—अच्छा जाओ! समाचार ज़रा जल्द-जल्द भेजना!

गु० च०—बहुत अच्छा प्रभो! (प्रस्थान)

हेरो०—ऐसा कोई भी नहीं मिलता है जो उसकी हत्या कर डाले! मैंने जितनों से इस कार्य के लिये कहा सबों ने साफ 'नहीं' सुना दिया। इतना भय! मुट्ठी भर हड्डियों का इतना भय! (सोचता है) परन्तु एक बात और है। एकाएक उसकी हत्या कराने से प्रजा के बिगड़ने का भय है। तब? (दूसरे गुप्तचर का प्रवेश)

गु० च०—सरकार! इस समय ईसा बाज़ार के चौक में है।

हेरो०—वहाँ वह क्या कर रहा है?

गु० च०—बहुत से अन्धों, लूलों, लँगड़ों और कोढ़ियों को आँखें, हाथ, पैर और सुन्दर चोले दे रहा है। लोग उसके ऊपर टूट से पड़ते हैं।

(गुप्तचर जाना चाहता है)

हेरो०—सुनो—

गु० च०—क्या आज्ञा है ! प्रभो !

हेरो०—युरोशलीम के सेनापति इस समय कहाँ हैं ?

गु० च०—अभी मैंने उन्हे जलूस ही की ओर जाते देखा था।

हेरो०—जाओ ! उन्हे मेरे पास भेजो—शीघ्र !

गु० च०—जो आज्ञा। (प्रस्थान)

हेरो०—हत्या तो करनी ही पड़ेगी—बिना इसके हमारा मंगल नहीं। परन्तु—हाँ कैसे ? अन्याय से ? यदि प्रजा बिगड़ गयी ? तब यह सेना किस दिन के लिये है ! हाँ तो पहले उसे गिरफ्तार करना चाहिये।

शावेल—सम्राट !

हेरो०—शावेल ! कोई नया समाचार ?

शावेल—जहाँ ईसा हो वहाँ नये समाचारो की कमी हो सकती है ? आश्चर्य है सम्राट ! इतना मान दुर्लभ है—सम्राट के लिये भी दुर्लभ ! जनता उसे अपने इष्टदेव से भी बड़ा जानती है—ओह !

हेरो०—चुप रहो ! मैंने उसका विरद वर्णन करने को तुम्हे नहीं बुलाया है—इस समय वह है कहाँ ? (तीसरे गुप्तचर का प्रवेश)

गु० च०—स्वामी ! वे धर्म-मन्दिर मे पहुँच गये।

शावेल—वहाँ ? क्यो गये ? ठीक है, ईसा जनता को प्रार्थना का ढोंग दिखाने गया होगा !

गु० च०—नहीं सरकार ! उसने पहुँचते ही धर्म-मन्दिर के द्वार पर वाली कपोत और बलि-पशु की दुकानों को उजड़वा दिया।

हेरो०—क्या ? क्या प्रजा विद्रोह करेगी ? वे लोग लड़ाई की तैयारी कर रहे हैं क्या ?

गु० च०—जनता में खूब उत्तेजना है। इस समय यदि ईसा इशारा भी कर दे तो लाखों आदमी प्राणों का मोह छोड़ राजकीय सेना से लड़ मरेंगे।

शावेल—उसने दूकानों को नष्ट करते समय क्या कहा था ?

गु० च०—कहता था कि मन्दिर क्रय-विक्रय का स्थान नहीं है। हमारे पिता के पवित्र निवासस्थान को अपने कलुषित लोभ से तुम लोग अपवित्र न करो।

हेरो०—हूँ ! (चौथे गुप्तचर का प्रवेश)

गु०च०—प्रभो ! ईसा ने युरोशलीम के महंत को मन्दिर से बाहर निकलवा दिया !

शावेल—क्या कहते हो तुम !

हेरो०—बाहर निकलवा दिया ?—एलाजर को—क्यों ?

गु० च०—ईसा का कहना है—शराबी या वेश्यागामी को धर्म-मन्दिर की गद्दी पर बैठने का कोई भी अधिकार नहीं !

(दोनों का प्रस्थान)

हेरो०—शावेल !

शावेल...प्रभो, आज्ञा !

हेरो०—ईसा का वह शिष्य तुम से फिर मिला था ?

शावेल—हाँ—अब तो वह आपकी मुट्ठी मे है । मैंने उसे खूब ही लालच दिया है। अब वह हमारे इच्छानुसार काम कर सकेगा ।

हेरो०—ठीक । उसकी सहायता से आज ईसा को गिरफ्तार करना होगा—आज्ञापत्र मै लिखे देता हूँ ।

शावेल—किस अपराध मे प्रभो ?

हेरो०—अब तो बड़ा अच्छा बहाना हाथ लगा है—शावेल ! अब हमे ईसा को गिरफ्तार करने के लिये कोई अधिक कष्ट न उठाना पड़ेगा। धर्म-मंदिर के पास की दूकानें नष्ट और एलाज़र को पदच्युत कर उसने अपने पैरों मे आप ही कुल्हाड़ी मार ली है। अब उस पर शान्ति भंग, राज-विद्रोह, ईश्वर-निन्दा इत्यादि सभी अपराध प्रमाणित हो जायँगे ।

शावेल—पर उसे गिरफ्तार कैसे किया जायगा ?—बलवा हो जाने का भय है ..

हेरो०—कुछ नहीं होगा । तुम, वह जहाँ पर हो वहीं, रात मे गिरफ्तार करो—यहूदा से भी सहायता लो ! एक काम और करो—

शावेल—फर्माइये !

हेरो०—अभी शाम होने में घड़ी भर की देर है। तुम शीघ्रता

से जाकर हमारी दस हज़ार सेना को तैयार कर लो और उसे शहर में घुमा दो।

शावेल—इसका क्या आशय है, सम्राट ?

हेरो०—इसका आशय बहुत ही बढ़िया है। निरस्त्र प्रजा सशस्त्र सेना को देखकर यह समझ जायगी कि हेरोद से—यहूदिया के सम्राट से—विद्रोह करना दिल्लगी नहीं है। समझे। जाओ, जल्दी करो।

शावेल—अभी। (प्रस्थान)

हेरो०—खेलवाड़ समझ रक्खा है। ऐसे दो चार और शान्ति के उपदेष्टा प्रकट हो जायँ तो बस चल चुका हेरोद का राज्य! ईसा! हट जा! हेरोद के मार्ग में से हट जा! नहीं तो वह तुझे क्रुद्ध पागल हाथी की तरह रौंद देगा, भूखे बाघ की तरह खा जायगा, महासर्प की तरह डॅस लेगा, भूकंप की तरह उलट देगा और अग्नि की तरह भस्म कर देगा।—भाग! ईसा भाग!!

षष्ठम दृश्य

स्थान—युरोशलीम मे एक मकान। समय—रात्रि

(ईसा अपने शिष्यो के साथ भोजन करने बैठे है)

ईसा—पीटर, आपस की फूट बहुत ही बुरी होती है। महाकाल इसी के बहाने सृष्टि का संहार करता है। मनुष्य की मृत्यु तभी होती है जब शरीर और प्राणो मे फूट हो जाती है—यदि ये दोनो आपस मे मिले रहे तो मनुष्य अमर हो जाय।

पीटर—सत्य है प्रभो!

ईसा—वृक्षो का सर्वनाश तभी होता है जब उन्ही की जाति का कोई काठ अपने बन्धुओं से फूट कर लोहे से—एक विजाति—से मित्रता कर लेता है।

फिलिप—निस्सन्देह प्रभो! फूट बहुत ही बुरी होती है।

ईसा—फूल तभी चुना जाता है जब कलियाँ फूट जाती है और डाल से पक जाने पर ही अंगूर तोड़ लिये जाते है।

एण्ड्रूज़—प्रभो! क्या किसी प्रकार इससे मनुष्यो का पिण्ड नही छूट सकता?

ईसा—संसार मे उद्योग करने से क्या नहीं हो सकता एण्ड्रूज़! परन्तु फूट से बचने के लिये कठिन तपस्या की आवश्यकता है।

बिना धैर्य के इसका नाश नहीं हो सकता। इसके लिये हमें सूर्य की तरह धीर होना चाहिये।

पीटर—सूर्य की तरह ?

ईसा—हाँ, पीटर, सूर्य की तरह। देखो चन्द्रमा उसके वैभव में स्पर्धा करता है। वह यह नहीं देख सकता कि उसी की जाति का कोई दूसरा भी उससे अधिक तेजस्वी रहे। इसलिये वह अन्धकार से मेल बढ़ाता है, जो न उसकी जाति का, न रंग का और न धर्म का। नीच अन्धकार, पूरे परिश्रम से थोड़ी देर के लिये सूर्य के तेज को ढक लेता है और चन्द्रमा को अपने कलंकित मुख की तेजस्विता दिखाने का अवसर देता है। उसी समय सूर्य का धैर्य दर्शनीय होता है। यदि वह भी चन्द्रमा सा क्षुद्र हो जाय और उसे प्रकाश देना बन्द कर दे, तो संसार से एक रत्न ही उठ जाय! परन्तु नहीं, उदार भास्कर चन्द्रमा को पूर्ववत प्रकाश देता है।

एण्ड्रूज—परन्तु प्रभो! यह गाथा तो स्वर्ग की है। पृथ्वी पर इतने धैर्य और क्षमा के लिये गुंजायश नहीं है। सूर्य से धीर को, यहां एक दिन के लिये भी स्थान नहीं है।

ईसा—स्वर्ग की गाथा है तो क्या एण्ड्रूज! परमात्मा सब को अपने कर्म का फलाफल देता है। देखते नहीं हो, चन्द्रमा महीने में पन्द्रह दिन ही तो किसी प्रकार अपना मुख दिखलाता है—सो भी अन्धकार के साथ। इधर सूर्य नित्य, एक भाव से

उदित होता है आह! बेचारे चन्द्रमा की बड़ी दुर्दशा होती है। अब वह इच्छा करने पर भी अन्धकार से अपना पल्ला नहीं छुड़ा सकता है। वह उससे प्रबल पड़ गया है। जब तक चन्द्रमा अन्धकार के पास रहता है, रोता है गिड़गिड़ाता है कि अब वह सूर्य पर आक्रमण न करे—लेकिन सब व्यर्थ होता है। स्वार्थी मित्र प्रबल होते ही शत्रु हो जाता है। ओह बड़ी विचित्र है—इस सृष्टि की रचना—ईश्वर की लीला! बड़ी ही विचित्र है पीटर!

पीटर—सुनता हूँ प्रभो, कहते चलिये।

फिलिप—महाराज! कुछ खाइये भी! आप तो केवल बातें कर रहे हैं!

ईसा—खाता हूँ फिलिप! क्यों न खाऊँगा? यही तो मेरा तुम्हारे साथ अन्तिम भोजन है।

सब—अन्तिम भोजन?—क्यों प्रभो, आप कहते क्या हैं?

ईसा—न—व्यर्थ ही कहता हूँ! खाओ मैं भी खाता हूँ (खाता है) यदि—नहीं—व्यर्थ......!

पीटर—कहिये गुरुदेव! आप क्या कहते-कहते रुक जाते हैं? आप का मुख मलीन क्यों हो गया दयामय!

ईसा—कुछ नहीं पीटर! वही फूट (खाते-खाते रुककर) कुछ नहीं—खाओ! मेरी धारणा व्यर्थ है।

फिलिप—प्रभो! आप क्या सोच रहे हैं—कहिये, हमारा हृदय चंचल हो रहा है।

ईसा—कहूँ ? अच्छा तो सुनो, खाते-खाते कुछ ऐसा जान पड़ने लगा कि यहाँ पर जितने हाथ इस थाली की रोटियाँ तोड़ रहे हैं उन्हीं में से एक—आज ही—मुझे गिरफ्तार करावेगा। आज यह धारणा क्यों उठी ? तुम लोग कुछ कह सकते हो ?

पीटर—आश्चर्य है ! प्रभु के हृदय में ऐसी बात क्यों आयी ? अवश्य इसमें कुछ रहस्य है।

ईसा—पीटर, इसमें कोई नूतनता नहीं है। ऐसा होता ही है—परन्तु यदि वह सत्य हो ! ओह असम्भव—भोजन करो।

(भोजन समाप्ति के बाद)

ईसा—पीटर ! तुम सब लोग सुन लो—अब मेरा अन्त सन्निकट है। अत्याचार की क्रोध भरी लाल आँखें मैं प्रत्यक्ष देख रहा हूँ। वह मुझे स्वतंत्र न रहने देगा। दमन भूखा है, उसकी तृप्ति तभी होगी जब वह मुझे खा जायगा।

पीटर—फिर प्रभो ! आप के बाद..... ?

ईसा—मेरे बाद तुम्हें कुछ भी कठिनाई न पड़ेगी। यदि तुम्हारा विश्वास मुझ पर है तो मैं तुम्हारे लिये कदापि न मरूँगा। तुम जब चाहोगे मुझे अपने पास ही पाओगे। मगर देखो, एक बात न भूलना।

पीटर—कौन सी बात प्रभो !

ईसा—यहूदियों के वर्तमान महन्तों, पुजारियों और अध्यापकों

का अनुकरण भूलकर भी न करना क्योंकि वे बातो मे धनपति होते हुये भी कर्म मे भिक्षुक हैं।

पीटर—सत्य है प्रभो !

ईसा—आज यहाँ के धर्म-मंदिर की लीला तुमने नहीं देखी ? वहाँ पर देवता से बढ़ कर थीं वेश्याये, प्रसाद से बढ़कर थी मदिरा, पतितो से बढ़ कर था महन्त। इसे तुम यहीं तक मत समझो, यही दशा देश भर की है—हो कैसे न ? जैसा राजा वैसी प्रजा। हेरोद के राज्य काल में महात्मा योहन ऐसों की गति नहीं है—हाँ एलाज़र अवश्य सुखी रह सकता है।

पीटर—ठीक है महाराज !

ईसा—गुरु बनने मे गौरव नहीं है, गौरव है कर्मवीर बनने मे। अकर्मण्य गुरु से कर्मण्य शिष्य कहीं श्रेष्ठतर है। अच्छा (शिष्यों से) तुम लोग चल कर अपने सोने का प्रबन्ध करो, तब तक मैं प्रार्थना कर लूं। तुम यहीं रहो पीटर, और तुम भी याकूब।

(ईसा, पीटर और याकूब को छोड़ सब का प्रस्थान)

ईसा—पीटर! याकूब! मैं अब प्रार्थना करता हूँ—तुम भी उस परमपिता के चरणों में मस्तक झुकाओ।

(सब घुटने टेककर मस्तक नत करते हैं)

ईसा—(प्रार्थना) महिमा-मय ! पृथ्वी कॉप रही है। भूकप से नहीं और न वज्रपात से ही—वह कॉप रही है पाप के भैरव निनाद से—अत्याचार के प्रबल धक्के से—क्रूरता की नंगी तलवार

के भय से। करुणेश! दयामय! पतितपावन! हमारी रक्षा करो! अनन्त नेत्र! क्या दुर्बलों की दुर्दशा के दृश्य आपकी आँखों के बाहर हैं? संसार श्रवण! क्या पददलितों की क्षीण-कण्ठ-ध्वनि आप तक नहीं पहुँचती है? ऐसा तो न होगा। तब आप द्रवित क्यों नहीं होते? हमे परीक्षा मे क्यों डालते हैं प्रभो?—

(यहूदा का प्रवेश)

यहूदा—(धीरे से) अरे! यह तो प्रार्थना कर रहे हैं। ऐसे पवित्र अवसर पर विघ्न उपस्थित करूँ? इन्हें गिरफ्तार कराऊ—मै इन्ही का शिष्य?—

ईसा—(उसी स्वर में) संसार से त्याग का डेरा उठ गया। यह क्यों प्रभो? उसे आपने हमसे दूर क्यों कर दिया है? क्या हम त्याग के अधिकारी नहीं हैं? यदि नही हैं, तब क्या प्रलय होगा? बिना त्याग के पृथ्वी का काम कैसे चलेगा? रक्षा कीजिए नाथ! हमें त्यागी बनाइये। नहीं तो सन्तान मर जायगी और माता उसे अपने शरीर का रक्त न पिलायेगी। पृथ्वी पर 'पानी पानी! प्यास! प्यास!' की पुकार उठेगी और शून्य मे जाकर लय हो जायगी परन्तु जलद जल-दान न देंगे। सूर्य के नेत्र मन्द—बन्द हो जायँगे, वायु चुप साधकर घर बैठ रहेगी—प्रभो!—

यहूदा—(धीरे से) एकाग्र होगये हैं! ध्यानावस्थित—यह तेज! स्वर्गीय जान पड़ता है। पर मुझे आज इनसे डर क्यों लगता है? क्यों—क्यों? मैं पाप करने जा रहा हूँ! यह कौन बोल रहा

है ?—मेरे भीतर से यह किसकी आवाज़ आ रही है ? गुरू से छल ? धर्मात्मा का अपमान ! घोर पाप है—हाँ, अवश्य है। लो ! मैं, अपने हाथ खींचे लेता हूँ, लौट जाता हूँ। (ठहर कर) परन्तु...परन्तु..

ईसा—(सजल) प्रभो ! त्याग का अनुकरण विश्वास भी कर रहा है। वह भी हमारी आँखो से धीरे-धीरे दूर होता जा रहा है। उसके बिना हमारी जीवन-नौका संसार-सागर मे कैसे चलेगी ? क्या विश्वास के अभाव मे पिता पुत्र का गला न घोंट देगा ? बहिन अपने भाई को विष न दे देगी ? मित्र मित्र का रक्त न पी लेगा ? प्रभो !..

यहूदा—परन्तु...धन ? (मुसकराता है) हेरोद क्या थोड़ा देगा ! यह तो एक न एक दिन पकड़े ही जायँगे। फिर मैं यह लाभ क्यों न उठा लूँ ? इसमे हानि क्या है ? कौन कहता है—पाप है ? कुछ नहीं, सब दुर्बलता...वे बाहर खड़े हैं। जाऊँ दरवाजा खोलकर भीतर बुला......! पर......पर......! कुछ नहीं। यह मेरी कमजोरी है .....

(बाहर जाता है)

ईसा—प्रभो ! एक बार प्रेम का साम्राज्य स्थापित हो !.. एक बार मै आँख भर, जी भर कर देख लूँ। वह प्रेम जिसके कोष मे शत्रु शब्द ही न हो, जिसकी दृष्टि मे कहीं विषमता ही न हो, जिसके हाथ में सहानुभूति का अमृत-पात्र हो, नेत्रों में दया की

ज्योति हो, सिर पर त्याग का मुकुट हो—वही—वही प्रेम ! प्रभो एक बार .. ..

(सशस्त्र सैनिकों के साथ शावेल का प्रवेश)

शावेल—यही है ?—हाँ यही है । सिपाहियो ! इसे बाँध लो !

ईसा—(पूर्वावस्था में ही) प्रभो !.. ...

(दो सिपाही उसका हाथ पकड़ कर झटकते हैं)

सिपाही—उठ ! कुछ कल के लिये भी रहने दे ।

(ईसा, पीटर, याकूब सब आश्चर्य-मुद्रा से आँखें खोलते हैं, ईसा को सिपाही धकेल कर आगे बढ़ाते हैं)

याकूब—(तलवार निकाल कर सिपाहियों से) हट जाओ ! छोड़ दो गुरूजी को !—नहीं तो अभी दो कर दूँगा !

ईसा—शान्त हो ! याकूब ! तलवार न चलाओ ! क्योंकि तलवार चलाने वालों का नाश तलवार ही से होता है । (शावेल से) भैया, आप मुझे किसकी आज्ञा से और क्यों पकड़ रहे हैं ?

शावेल—यह देखो ! सम्राट महोदय की यह आज्ञा-पत्र है । मैं तुम्हे शांति-भंग तथा ईश्वर-द्रोह, राज-विद्रोह के अपराध में पकड़ता हूँ । सिपाहियो, बाँध लो ! (ईसा से) मै राज नियम पालन करने के लिये विवश हूँ ।

(ईसा को लेकर शावेल का प्रस्थान)

पीटर—हमारे तेजस्वी सूर्य को राहु ने ग्रस लिया !

सप्तम दृश्य

स्थान—न्यायालय । समय—दोपहर

(विचारपति न्यायासन पर बैठे—उनके इधर-उधर पंचगण—हथकड़ी और बेड़ियों से जकड़ा हुआ बरब्बा खड़ा)

विचारपति—बरब्बा, तुमने युरोशलीम के धर्म-मंदिर मे महंत और सेनापति के सामने महारानी हेरोदिया की हत्या की है ?

बरब्बा—अवश्य ! आप बिलकुल सच कह रहे हैं ।

विचारपति—तुम्हीं यहाँ के प्रसिद्ध डाकू सरदार हो ?

बरब्बा—जी हाँ, किसी समय मैं अवश्य डाकुओं का नेता था ।

विचारपति—(पंचो से) पंच महोदय, अपराधी अपना अपराध स्वीकार करता है । अब आप लोगों की क्या सम्मति है ?

सब पंच—इसे दण्ड मिलना चाहिये ।

विचारपति—(कुछ सोचकर और लिख कर) डाकू सरदार और हत्यारा बरब्बा ! तुझे महारानी हेरोदिया की हत्या के अपराध मे सर्व सम्मति से मै प्राणदंड की व्यवस्था देता हूँ । जिस प्रकार तेरा पाप सबसे बडा है वैसे ही यह दंड भी है । तुझे कुछ और कहना है ?

बरब्बा—मुझे एक बात अवश्य कहनी है पंच महाशयो ! और

विचारपति महोदय ! रानी हेरोदिया की हत्या कर मैंने वही काम किया है जो एक विचारपति कर सकता था। इसके लिये मुझे प्राण-दंड देना न्याय की हत्या करना है। मुझे पुरस्कार मिलना चाहिये।

विचारपति—महारानी को मार कर तूने विचारपति का काम किया है ? कैसे ?

बरब्बा—उसी के कुटिल षड़यत्र से हमारे धार्मिक पिता महात्मा योहन्न की हत्या हुई थी। जिस दिन सारे यहूदियों के धर्म-गुरु को प्राणदंड दिया गया था उस दिन न तो दंड सुनाने वाले (विचारपति से) आप थे और न सम्मति देने वाले (पंचो से) आप उस दिन अत्याचार के क्रूर-करो ने कुछ सत्य शब्दो के लिये धर्म-पिता का गला दबोच दिया था—उनकी हत्या की थी। उसी हत्या का दंड मैने हेरोदिया को दिया और न्याय की लाज रख ली—भला कहिये इसके लिये प्राण-दंड ही उचित पुरस्कार है ?

(हथकड़ी सहित सैनिकों के बीच में शावेल के साथ ईसा का प्रवेश)

बरब्बा—(ईसा को प्रणाम करके) यह क्या ? आप भी आ गये ! महात्मा ईसा की जय !

नेपथ्य मे—'महात्मा ईसा की जय !'

विचारपति—(आवेश से) क्यों महाशय ! बाहर यह कौन हल्ला मचा रहे हैं ?

शावेल—ईसा के पीछे नगर की जनता आयी है। यह उन्हीं

का उत्पात है (एक सिपाही से) तुम बाहर जाकर भीड़ को तितर-बितर करने का प्रबन्ध करो !

विचारपति—इन्हें आपने किस अपराध के लिये गिरफ्तार किया है ? इनका नाम क्या है ?

शावेल—यह बैतुलहम मे रहने वाले जोज़ेफ नामक एक लोहार का पुत्र—प्रसिद्ध क्रांतिकारी—ईसा है। इसे हमने सम्राट की आज्ञा से राजविद्रोह, शांति-भंग तथा ईश्वर-निन्दा करने के अपराध मे गिरफ्तार किया है।

विचारपति—क्या साक्षी के साथ आप अपनी बातों का प्रमाण दे सकते हैं ?

शावेल—दे क्यो नहीं सकता ? साम्राज्य के गुप्तचरो ने समय-समय पर ईसा के व्याख्यानो को सुना और लिखा है। उन्हे क्रम से आप बुलाकर पूछ लीजिये। (नामावली देकर) यह उनकी नामावली है।

विचारपति—अच्छी बात है। एडविन किसका नाम है ?

एक गुप्तचर—(प्रणाम करके) मेरा, महाशय !

विचारपति—तुमने ईसा को कहाँ पर राज-विद्रोह-पूर्ण भाषण देते देखा या सुना है ?

एड०—कोई दो महीने पहले की बात है इसका एक भाषण कैसरिया नगर मे हुआ था। उस समय मैं अपने प्रधान की आज्ञा से वहाँ पर उपस्थित था। सभा की जितनी उपस्थिति थी उसकी

कोई कल्पना भी नहीं कर सकता है। लक्षाधिक नर-नारी एकत्र थे—जिसमें अधिकतर सशस्त्र थे।

बरब्बा—क्या कहा सशस्त्र थे? सुफैद झूठ! वहाँ पर बरब्बा भी था एडविन साहब!

विचारपति...तुम चुप रहो!

एड०—ईसा ने अपने भाषण मे जो कहा था उसका तत्व मैंने यहाँ (एक छोटी सी पुस्तक दिखाकर) पर लिख लिया है। इसने 'कहा था कि—'भाइयो! अत्याचारी हेरोद के ऊपर परमात्मा का वज्र शीघ्र ही गिरने वाला है। क्योंकि वह बड़ा नीच है। देखो, इस समय जो उसका साथ देगा उसे हमारा स्वर्गीय पिता कठिन दण्ड देगा। और, जो उससे असहयोग करेगा उसको स्वर्ग के राज्य में सर्वोत्कृष्ट स्थान दिया जायगा! तुममें से वह धन्य होगा जो पापी हेरोद को अपनी तलवार के घाट उतार सके। बोलो, कौन परमात्मा का प्यारा बनने को तैयार है?'—ईसा की बात समाप्त भी न होने पायी थी कि सहस्रों तलवारें तथा अनेक बर्छे सूर्य की किरणों में चमक पड़े! सब के सब चिल्ला उठे कि—'हम सब तैयार हैं!'

बरब्बा—(क्रोध से) नीच! अधम!! इतना असत्य? स्वार्थ-सिद्धि के लिये—धन के लिये—इतना बड़ा पाप करेगा? लौटा ले अपने शब्दों को, नहीं तो पृथ्वी अपनी छाती फाड़ कर तुझे छिपा

लेगी। नारकी! स्वदेश-भक्त-साधुओं से खेलवाड़ न कर! नहीं तो..

विचारपति—तुम चुप रहो!

बरब्बा—विचारपति! चुप कैसे रहूँ? महात्मा ईसा को हिंसावादी कहना उतना ही बड़ा पाप है जितना धर्म-पुस्तक को आग में जलाना। चुप कैसे रहूँ?

विचारपति—(सिपाहियों से) तुम लोग इसे अभी बाहर ले जाओ।

बरब्बा—अच्छी बात है विचारपति जी! मैं समझ गया। आपकी आँखों का पैशाचिक प्रकाश चमक चमक कर कह रहा है—आप न्याय का गला घोंटियेगा!—घोंटिये! कितने दिन चमड़े की नाव पर जल-विहार कीजियेगा? (सिपाहियों से) चलो भाइयो! मुझे बाहर ही ले चलो! यहाँ पर ठहरने से पाप लगेगा।

(सिपाही बरब्बा को बाहर ले जाते हैं)

विचारपति—एलाज़र कौन है?

शावेल—एलाज़र महाशय स्थानीय धर्म-मन्दिर के महन्त हैं। अभी वे आये क्यों नहीं? (एक सिपाही से) देखो तो, वे स्यात् बाहर हों।

(हाँफते हुए एलाज़र और डेविड का प्रवेश)

एला०—डेविड! बड़ी ही स्वादिष्ट थीं। आज की मछलियाँ बड़ी ही स्वादिष्ट थीं!

डेविड—अरे, चुप भी रहिये ! आप न्यायालय के भीतर आ गये है । अब मछली की चर्चा छोड़िये ।

शावेल—धन्य है महापुरुष ! अब आ रहे है ? (विचारपति से) एलाज़र महाशय आ गये हैं श्रीमान् !

विचारपति—महोदय ! आपने ईसा को ईश्वर-निन्दा करते कब सुना था ?

एला०—ईश्वर-निन्दा करते ? ईसा को ? नहीं-नहीं, आप भूलते है विचारपति जी ! ईसा तो महापुरुष है—वह ईश्वर निन्दा क्यों करेगा ? डेविड ! क्या तुमने कभी सुना था ?

शावेल—महन्त जी । (आँखें दिखाकर तलवार दिखाता है)

विचारपति—(एलाज़र से) आप कुछ सनक तो नहीं गये हैं महन्त जी ?

एला०—नहीं-नहीं, विचारपति जी ! याद आ गयी—आ गयी ! आज भोजन अधिक हो जाने से स्मृति का द्वार बन्द हो गया था । अब धीरे-धीरे वह खुल रहा है । ओह ! यह मनुष्य ईसा ! बड़ा भारी ईश्वर-निन्दक है । अभी कल ही की तो बात है । मैं धर्म मन्दिर मे उपासना कर रहा था, उसी समय यह सैकड़ो आवारो के साथ भीतर घुस आया और मेरे सिर पर तलवार तान कर कहने लगा—'प्रतिज्ञा कर, कि अब कभी ईश्वर को सिर न झुकाऊँगा, जानता नहीं है ? ईश्वर मैं हूँ । मैं चाहूँ तो एक क्षण में इस मन्दिर की एक-एक ईंट उखड़वा दूँ ।'

डेविड—एलाज़र ! यह क्या कह रहे हो ! तुम्हें क्या हो गया है ? क्या मैं उस समय नहीं था ? तुम किसकी उपासना कर रहे थे—वेश्या और मदिरा की या ईश्वर की ? उस समय ईसा के हाथ मे तलवार कहाँ थी और मन्दिर मे सैकड़ो आवारे कहाँ थे ? कुछ होश की बातें करो !

विचारपति—तुम चुप रहो !

एला०—बिगड़ते क्यो हो ? भाई ! क्या मैने झूठ कह दिया—? हाय ! हाय ! तुमने मना क्यों नहीं कर दिया ? मैं इतना भोजन न किये होता । (शावेल से) क्यो सेनापति जी ! मैंने कहने में कुछ भूल की है क्या ? क्षमा कीजियेगा मुझे आपकी बतलायी हुई बातें भूल गयीं । हाय—हाय !! आपने बड़ा ही अच्छा बयान बतलाया था ।

डेविड—यह कहो ! तुम रटाये गये थे ! सुनते हैं विचारपति जी ?

विचारपति—तुम चुप रहो ! (एलाज़र से) आप बैठ जायँ । (ईसा से) तुम्हें इन आदमियो के कथन के विरुद्ध जो कुछ कहना हो कहो !

ईसा—मैं क्या कहूँ ? जहाँ पर विचारक ही वादी और—रक्षक ही भक्षक—वहाँ पर क्या कहा जा सकता है ? मैं न तो इस न्यायालय को अदालत मानता हूँ और न हेरोद को सम्राट—जिसके आप नौकर है । मुझे कुछ नहीं कहना है ।

विचारपति—(पंचो से) आपकी क्या सम्मति है ?

पंचगण—ईसा पर दोष प्रमाणित है। हम सब एक मत से इसे अपराधी और दण्डनीय मानते है।

डेविड—पञ्च-परमेश्वर! यह घोर अन्याय हो रहा है।

विचारपति—तुम चुप रहो! (कुछ लिखकर ईसा से) प्रमाणो की अधिकता से और साक्षियों से यह सिद्ध हुआ है कि तू क्रान्तिकारी है, सम्राट के विरुद्ध लड़ाई ठानने की चेष्टा किया करता है, यही नहीं, तू ईश्वर-निन्दक भी है! ये अपराध इतने गुरु हैं कि इनकी तुलना का कोई दण्ड ही नहीं हो सकता है। अस्तु मै तुझे प्राण-दण्ड देता हूँ। तेरे पापो को देखते हुए यह दण्ड कुछ भी नही है।

डेविड—प्राण-दण्ड ? यह क्या विचारपति जी! महात्मा ईसा को प्राण-दण्ड ? ऐसे धर्मात्मा की हत्या कराइयेगा ? क्या महात्मा योहन की हत्या से आप लोगो का पेट नहीं भरा है ? फिर से विचार कीजिये महाशय! पञ्च-गण!

पञ्च०—ठीक है। ईसा के लिये प्राण-दण्ड ही उचित है। इसे क्रूस पर चढ़ाकर इसके पापो का प्रायश्चित्त कराया जायगा।

विचारपति—(डेविड से) भाई! मै नियम पालन के लिये बाध्य हूँ। सम्राट-विद्रोही और ईश्वर-निन्दक को प्राण-दण्ड ही उचित है। सिपाहियो! ले जाओ!

डेविड—ठहरिये! आज वर्ष का पवित्र दिन है और आपको

अधिकार है कि एक अपराधी का प्राण-दण्ड क्षमा कर दें। विचारपति जी! मै आपके पैर पड़ता हूँ आप महात्मा ईसा को छोड़ दीजिये! धर्मात्मा की हत्या न कीजिये!

(घुटने टेक देता है)

विचारपति—ठीक कहते हो! आज मै अपनी इच्छानुसार एक अपराधी का प्राण-दण्ड क्षमा कर सकता हूँ। दो को दण्ड दिया है! पञ्च महोदयो!! सम्मति दीजिये किसका अपराध क्षमा किया जाय? ईसा का या बरब्बा का?

पञ्चगण—ईसा को अवश्य दण्ड दिया जाय। यह इश्वर-निंदक है। इसे क्षमा नही मिल सकती! बरब्बा को छोड़ दीजिये।

विचारपति—ठीक है। मेरी भी यही सम्मति है। (सिपाही से) जाओ! हत्यारे को मुक्त कर दो!

(न्यायालय का पर्दा गिरता है। डेविड न्यायालय के बाहर सड़क पर)

डेविड—इसे कहते है स्वेच्छाचार! अधिकार के दुरुपयोग का ऐसा ज्वलन्त उदाहरण संसार के इतिहास में खोजने से भी न मिल सकेगा। हेरोद! ले, यह तेरे अत्याचार के चरणो पर दूसरे महात्मा का बलिदान! इसे स्वीकार कर और अपने पिशाच को प्रसन्न कर!

अष्टम दृश्य

स्थान—बध-भूमि। समय सायं

[सामने एक ऊँचे स्थान पर क्रूस रक्खा है। सिपाहियों के बीच में ईसा खड़े हैं और अनेक आसनों पर विचारपति, शावेल, स्टिफ़ेन, मेरीना इत्यादि बैठे हैं।]

शावेल—(बैठे ही बैठे) सिपाहियो ! इस समय तुम जिसे घेर कर खड़े हो वही यहूदियो का सम्राट है। इसे छोड़ दो ! नहीं तो तुम्हारी रक्षा असम्भव हो जायगी (ईसा से व्यंगपूर्ण स्वर से) क्यों सम्राट ! हा हा हा हा !

स्टिफेन—सेनापति ! तुम्हारे इस परिहास का क्या अर्थ है ?

शावेल—(स्टिफ़ेन की ओर घृणित दृष्टि से देखकर) सिपाहियो ! सम्राट को शीघ्र उनका वस्त्र पहना दो !

सिपाही—जो आज्ञा !

(ईसा को लाल रंग का चोग़ा पहनाता है)

शावेल—इनका मुकुट क्या हुआ ? उसे भी लाओ !

(सिपाही काँटों का एक मुकुट ईसा के सिर पर रख देता है)

शावेल—बवकूफ ! एक-एक—बात कहनी होगी ? राज-दण्ड क्या हुआ ?

सिपाही—(एक जंगली लकड़ी दिखा कर) यह है। श्रीमान् ! (ईसा के हाथ में देता है)

शावेल—सम्राट सज गये ! अब इनकी पूजा होनी चाहिये। अपने हाथों मे पुष्प लेकर दो सिपाही सामने आओ !

(कोड़े लेकर दो सिपाही आते हैं)

दोनों सिपा०—पूजन आरम्भ करे ?

शावेल—ज़रा ठहरो। मैं 'सम्राट की जय' कहूँगा और प्रत्येक जय-नाद पर तुम पुष्प-वृष्टि करना ! (दर्शकों से) आप सब लोग उठ कर सम्राट की वन्दना कीजिये।

(सब खड़े हो जाते हैं और हास्योत्पादक रीति से ईसा को सलाम, प्रणाम करते हैं)

शावेल—ऐसे नहीं, यह सम्राट को पसन्द न आयेगा। मैं जय बोलता हूँ आप लोग मेरा अनुकरण कीजिये। और-सिपाहियो तुम लोग भी आरम्भ कर दो।—'सम्राट ईसा की जय !'

सब—(भिन्न भिन्न स्वर में) 'सम्राट ईसा की जय !'

(ऐसी ही जय ध्वनि तीन बार होती है और बार बार सिपाही ईसा को कोड़े लगाते हैं। चौथी बार ज्यों ही शावेल जय बोलने को चलता है त्यों ही स्टिफ़ेन झपट कर उसका मुँह बन्द कर देता है)

स्टिफ़ेन—शावेल ! यहूदिया का प्रगल्भ सेनापति ! नीच !! बस कर !!! तेरे पापों का घड़ा भर गया है। उसे इतनी शीघ्रता से न छलका, नहीं तो कहीं का भी न रहेगा।

शावेल—(झपट कर) हट जा सामने से। ईसा के कुत्ते। हट जा! कहता हूँ हट जा!!

स्टिफेन—यह नहीं हो सकता—कभी नहीं हो सकता। महात्मा ईसा को प्राणदण्ड मिला है—वही दे। तुझे उनका इस प्रकार अपमान करने का कोई अधिकार नहीं है (विचारपति से) आप विचारपति होकर चुप है? क्या आप के ओठों को सम्राट हेरोद ने सोने और चाँदी के तारों से सी दिया है? बोलते क्यों नहीं?

शावेल—सिपाहियो! मारो!! और मारो!!! स्टिफेन हट जाओ! मुझे क्रोध चढ़ रहा है! मारो! मारो!!

(सिपाही मारते हैं)

स्टिफेन—विचारपति! नहीं-नहीं अविचारपति! तुम्हे मनुष्य बना कर परमात्मा ने बड़ी भारी भूल की है। नीच! तेरे ऊपर अनन्त धिक्कार हैं! शावेल! क्रूस पर चढ़ाओ! महात्मा जी को क्रूस पर चढ़ाओ! उनका अपमान न करो! मै हाथ जोड़ता हूँ! नहीं तो, अब तुम्हारा कल्याण नहीं है।

शावेल—कल्याण नहीं है? मेरा तू एक फतिंगा क्या बिगाड़ लेगा?

स्टिफेन—अच्छा तो दे आज्ञा! देखूँ किस मुँह से बोलता है! इस बार बोलते ही तेरी जीभ पृथ्वी पर नाचने लगेगी। बोल!

ईसा—भैया ! शान्त हो ! यह जो कुछ करते हैं ठीक कर रहे हैं, इन्हे मत रोको !

स्टिफेन—क्षमा कीजिये प्रभो ! अब अहिंसा की इति होगई। आप को अपमानित होते देखकर मैं अपनी आत्मा का अपमान कदापि न करूँगा। क्यों करूँ और किसके भय से करूँ ? ना, कदापि न करूँगा। (शावेल से) नीच !

शावेल—मूर्ख क्रिस्मिटान ! क्या टर्र-टर्र करता है। चुप रह ! सिपाहियो मा......

('मा' शब्द निकलते ही स्टिफेन शावेल पर झपटता है और उसे एक लात मार कर उसका मुख बन्द कर देता है)

स्टिफेन—बोल ! देखूं कैसे बोलता है ? बोल !

(सिपाही शावेल की रक्षा करते हैं)

शावेल—(उठ कर) सिपाहियो ! इसे गिरफ्तार कर लो ! बाँध लो !!

स्टिफेन—बाँध. ले नीच ! (सिपाही स्टिफेन को बाँध लेते हैं)

शावेल—ले जाओ ! अभी इसे हवालात में बन्द करो।

(एक ओर से सिपाही स्टिफेन को ले जाते हैं दूसरी ओर से एक हाँडी लिये एलाज़र आता है)

एलाज़र—सेनापति जी, किसी को भूखों न मारिये ! यह मुझसे न देखा जायगा। ओह, भूँखो मरना ? ना ! ना ! बड़ा कष्ट होगा। क्रूस पर चढ़ने में क्या कष्ट है ? परन्तु भूख लगने पर

जान पड़ता है मानो, पेट को कोई व्याघ्र अपने पंजो से खरोंच रहा है। यह लीजिये, मैने इनके लिये विशेष रीति से यह मछली तैयार करायी है। यह रसेदार है—बड़ी ही स्वादिष्ट है—ओह! थक गया! कोई नौकर भी नहीं था और डेविड तो कल ही से रूठा हुआ है—लीजिये!

शावेल— (क्रोध से) लाइये महंत जी क्यों नहीं खिलाऊँगा! इन्होंने हमारा बड़ा उपकार किया है—इशारे से अपने शिष्य को मेरा अपमान करने को कहा है। क्यो नहीं खाने दूँगा? यह सम्राट है। दीजिये (एलाज़र से हॉडी लेकर उसमें थूक देता है) सिपायो! लो, यह सम्राट का जलपान है, इन्हे खिला दो। (मुँह फेर कर) स्टिफेन!—तू ने शावेल को क्या समझ रखा है? अपमान—घोर अपमान! (सिपाहियों से) खिलाओ जी खड़े क्यों हो!

(सिपाही हॉडी को ईसा के मुँह से लगाते हैं वह मुँह फेर लेता है।)

विचारपति—जाने दो! अब इसे क्रूस पर चढ़ाओ!

शावेल—आप भी खूब कहते हैं—भला सम्राट अकेले ही सिहासन पर बैठेगे? कोई दरबारी भी तो चाहिये। जाओ, कारागार से दो ऐसे डाकू लाओ जिन्हें प्राणदण्ड दिया गया हो—दो क्रूस भी लाना। वे सम्राट की अगलबगल क्रूस पर चढ़ाये जायेंगे।

दो सिपाही—जो आज्ञा।

(प्रस्थान)

(मरियम का प्रवेश)

ईसा—(धीरे-धीरे) वह कौन स्त्री आ रही है—यह तो वही मूर्ति...(रुक कर) माँ ! माँ !! तुम यहाँ क्यों आईं ? रोओगी ? देखो रोना मत। तुम्हारा पुत्र क्षण भर बाद स्वर्गीय हँसी हँसेगा। ऐसे अवसर पर तुम रोना मत—सुनती हो माँ !

(ईसा घुटने टेक कर प्रणाम करता है और मरियम दौड़ कर उसका सिर अपनी छाती में छिपा लेती है।)

मरियम—तू भी यही कहता है ? मेरा लाल ! न रोऊँ ? तब क्या करूँ ? माताओं की हास्य-नदी अपनी संतानों के विपत्ति निदाघ से सूख जाती है बेटा ! हाँ, उनका अश्रु-समुद्र कभी नहीं सूखता। वे असमय समय रोना ही जानती हैं। पुत्र को सुखी देखकर आनंद से रो पड़ती है और दुखी देख कर शोक से। उस समय उनके आँसुओं का समुद्र क्षुब्ध हो उठता है—उमड़ पड़ता है—हृदय पोत को उलट पलट देता है। बेटा ! हृदय ! लाल !! न रोऊँ ? अच्छा न रोऊँगी—तू हँस ! देखूँ तो वह हँसी जो मेरी भूख, प्यास दूर कर देती है। देखूँ तो वह हँसी जिसमें स्वर्ग—उमड़ा पड़ता है—देखूँ ? रोऊँगी क्यो ? पर—

ईसा—माता ! (चोगे से आँसू पोंछता है)

मरियम—बड़ा सुख है ! बड़ा आनंद है। इसी समय परमात्मा, अंतर्यामिन् ! उठा लो ! मुझे उठा लो ! तुम परमात्मा हो

तो क्या, आशीर्वाद पाओगे—मातृ-हृदय का आशीर्वाद तुम्हें भी सुखद होगा ।

शावेल—हट रे यहाँ से । आई है ढकोसला फैलाने । (सिपाहियों से) अरे एक आदमी जाकर देखो वे कहाँ रह गये ? डाकुओं को भी लाये नहीं ।

सिपाही—वे आ गये प्रभो !

(सिपाहियों का दो बँधे हुए डाकुओं के साथ प्रवेश)

मरियम—(शावेल से) तुम कौन हो भैया ? इतनी नीरस बात कैसे बोलते हो बेटा । क्या तुम्हारी माँ नहीं है ? तुमने जननी-हृदय नहीं देखा है ? अच्छा आओ देखो ! चीर डालो मेरा हृदय और देखो उसमें कौन-सा ढकोसला है ! भैया, यदि माता के हृदय में ढकोसला होता, तो, तुम आज इतने बड़े न होते । तुम होते या नहीं, इसमें भी संदेह है—(ईसा से) मेरे लाल ! (लिपट जाती है)

शावेल—सिपाहियो, इस डायन को पकड़ कर ले जाओ ! किसी जंगल में छोड़ आओ—जाओ !

(सिपाही मरियम को घसीटते हैं)

मरियम—(आवेश से) मत हटाओ ! गाय को उसके बच्चे से दूर न करो ! नहीं तो, अनर्थ हो जायगा । हाय, तुम सब-के-सब निर्दयी हो—निष्ठुर हो ! अभिशाप—माता का अभिशाप लोगे ? मान जाओ—भैया ! बेटा !

(सिपाही दूर घसीट ले गये)

मरियम—नही मानोगे ? पापियो ! जाओ ! प्रलय हो जाय । तुम्हारा सर्वनाश हो जाय । युरोशलीम पर वज्रपात हो ।

(सिपाही घसीट ले गये)

ईसा—(अर्ध स्वगत) माता का अपमान । मेरे हृदय मे यह कैसा आन्दोलन हो रहा है । माता का......! पर इस अत्याचारी शासन मे तो न जाने कितनी माताओ का नित्य प्रति यों ही अपमान होता है. चलेगा ? दयामय ! अत्याचार का शकट अभी और आगे चलेगा ?—नही...। माता का अपमान !

शावेल—(सिपाहियों से) इन डाकुओ के क्रूस भी दुरुस्त हो गये ? अच्छा पहले ईसा के हाथो और पैरो मे काटे ठोक दो ? जल्दी करो—दिन बहुत कम है ।

(शान्ति का सावेश प्रवेश)

शान्ति—ठहरो ! अत्याचार के बादलो ! सूर्यास्त के पहले, कमलिनी को अपने मित्र की पवित्र मूर्ति ऑख भर देख लेने दो । नही तो उसके दुखी हृदय से प्रचण्ड ऑधी की तरह शोकोच्छ्वास निकलेगा और तुम्हारे सुख-सौभाग्य का बेड़ा ग़र्क हो जायगा । ठहरो ! क्रूरता की अग्नि-शिखाओ ! किसी दरिद्र का सर्वस्व भस्मसात् करने के पहले उसे अपनी निधि निरीक्षण कर लेने दो । नहीं तो उनकी ऑखो से वह सजल तूफान प्रकट होगा जिसमे तुम्हारा अस्तित्व तक लुप्त हो जायगा ! जल्दी मत करो !

शावेल—(शान्ति को न पहचान कर। सक्रोध) अब यह कौन आयो ?

शान्ति—मैं हूँ—हेरोद के सेनापति। पहचानो तो, तुमने मुझे कभी देखा है ?

शावेल—तू...तुम.. आप ? उस दिन वाली ?

(सर झुका लेता है)

ईसा—शान्ति !

शान्ति—प्रभो। मैं समझ गयी। आप मेरे आँसुओं से डरते है। नहीं ! उनकी चिन्ता भूल कर भी न कीजियेगा। मै इस समय बहुत ही प्रसन्न हूँ। चलिये, मै आपके साथ ही चलूंगी।

ईसा—तुम क्या कहती हो ? शान्ति !

शान्ति—कुछ नहीं ! आज आपकी तैयारी है यह सुन कर मैंने भी अपना सामान ठीक कर लिया है। जहाँ चन्द्रमा होगा वहीं पर उसकी प्रेमिनी चकोरी भी रहेगी। मैंने पास ही के वन मे अपनी चिता अपने ही हाथों चुन कर सजा दी है और उसमे आग लगा कर आपकी चरण-धूलि लेने को यहाँ भागी आयी हूँ। दीजिये—नाथ ! मुझे चरण-रज दीजिये ! मै आपके साथ ही चलूँगी।

(ईसा की चरण-रज अपने सिर पर चढ़ाती है)

ईसा—शान्ति !

शान्ति—नहीं स्वामिन् ! कुछ न कहिये ! हाथ जोड़ती हूँ कुछ न कहिये। मै अवश्य चलूँगी। बड़ी इच्छा है। वहाँ पर दमयन्ती

को देखूँगी, सावित्री—सीता और द्रौपदी के दर्शन पाऊँगी—बस ! देर हो रही है। मेरी चिता तैयार है। सुनिये कान देकर सुनिये ! अग्निदेव मुझे 'हो ! हो !' कर पुकार रहे हैं—बस......नाथ !

(तीर-सी छूटकर जाती है)

ईसा—धन्य ! आर्यभूमि ! धन्य—शान्ति !

शावेल—गयी ? वह गयी ? उसमें बिजली से अधिक ज्योति थी—ओह ! मेरी आँखें फूटने से बच गयीं। सिपाहियो, जल्दी करो ! सब के कपड़े उतार क्रूस पर चढ़ाओ !

(सिपाही पहले ईसा के कपड़े उतार उसे क्रूस पर खड़ा कर उसके हाथों-पावों और मस्तक में कील ठोकते हैं। वह छटपटाता है)

शावेल—बुला—अपने ईश्वर को। ज़रा देखूँ तो उसका मुँह कैसा है।

(वायु हा-हा करती है, बादल गरजते हैं)

नवम दृश्य

स्थान—प्रासाद । समय—रात्रि

(हेरोद शराब पी रहा है)

हेरो०—ईश्वर—अर्थात्, शक्ति और धन। बस यही न ? फिर कौन कह सकता है कि मै ईश्वर नहीं हूँ ? जिस कल्पित ईश्वर की मूर्ख मन्दिरों मे उपासना करते है, उसके घर मे मै जब चाहूँ तब अग्निदेव को न्यौता दे सकता हूँ। तब ? तब तो उसकी शक्ति मुझसे कम हुई—मैं उससे बड़ा हुआ ? ठीक। इस पहलू से भी ठीक है। जो सब से बड़ा वही ईश्वर—हा हा हा हा।

(शराब पीता है)

(मेरीना का उद्भ्रात-भाव से प्रवेश)

मेरीना—सम्राट।

हेरो०—कौन ? मेरीना ! बहुत दिनो बाद दिखायी पड़ी है। आज यह नयी बात कैसी ?

मेरीना—सम्राट ! तुम क्यों नहीं गये ?

हेरो०—कहाँ मेरीना ?

मेरीना—वहीं—श्मशान भूमि पर—अत्याचार की रंग-भूमि पर। तुम क्यो नहीं गये ? सम्राट ! तुम्हें आज वहाँ अवश्य जाना चाहिये था।

हेरो०—जाना चाहिये था मुझे ? क्यो ?

मेरीना—आज वहाँ पर एक ही समय स्वर्ग और नरक का आदुर्भाव हुआ था। अशान्ति और शान्ति का सम्मेलन हुआ था। करुण क्रन्दन और क्रूर हास्य का सम्वाद हुआ था! ओह! अपूर्व था!

हेरो०—कैसा ? तू क्या कहती है ?

मेरी०—मातृ-स्नेह की स्वर्गीय नदी वहाँ पर उमड़ आयी थी परन्तु शठत्व के मल-मूत्र-भरे एक दूसरे नारकीय नद के कारण उसे लौट जाना पड़ा! और शान्ति! अद्भुत!! उसे देखते ही अशान्ति के छक्के छूट गये, क्रूरता कान्ति-हीन हो गयी, नीचता ने सिर झुका लिया, प्रेम नाचने लगा, करुणा पानी-पानी होकर अपने नेत्र-भवन के बाहर फूट कढ़ी, मनुष्यता मधुर मुस्करा पड़ी! उस समय वहाँ पर सचमुच स्वर्ग का राज्य प्रकट हो गया था!! परन्तु—सम्राट!

हेरो०—मेरीना! पागल हो गयी है क्या ? क्या तू भी बध-भूमि पर गयी थी ? उस—उस ढोंगी महात्मा को मरते हुए देखा तूने ? वहाँ के कुछ समाचार बता! मरने के पहले, डर कर वह क्षमा माँगने लगा था क्या ?

मेरीना—वहाँ का समाचार ही कहने को तो मैं तुम्हारे पास आयी हूँ। ऐसा समाचार तुमने कभी न सुना होगा! भविष्य में

प्रभाव नहीं पड़ा ! वह हँसती ही रही !! जब तक मैं वहाँ पर थी मैंने उसे हँसते ही पाया !!! चलो ! देख आओ—सम्राट ! वह अद्वितीय हँसी देख आओ ! अभी महात्मा ईसा मरे न होंगे। चलो ! चलो !!

हेरो०—(क्रोध से) फिर वही प्रशंसा ? मेरीना ! उसकी प्रशंसा मुझे तीर-सी लगती है। चुप रह !

मेरीना—तुम क्षमा माँगने की बात पूछते थे न ? तुमने ठीक पूछा था। वह क्षमा माँगते थे। सम्भवत: अभी भी माँगते होंगे। पर किससे, सो भी सुनोगे ? वह कहते थे—'पिता ! इन्हें क्षमा कर क्योंकि यह नहीं जानते कि कर क्या रहे हैं !' सुनते हो ? वह तुम लोगों के लिये—तुम्हारे शब्दों में—'अपने शत्रुओं के लिये'—क्षमा माँग रहे थे ! सम्राट !

(शावेल का प्रवेश)

मेरीना—वह आया !—आ गया सम्राट ! तुम्हारा कुत्ता—कृतज्ञ कुत्ता—आ गया। इससे पूछो ! यह दुम हिला-हिलाकर तुम्हारे मन का समाचार सुना देगा—पूछो !

(तेज़ी से प्रस्थान)

हेरो०—अच्छा हुआ चली गयी। इसकी बातों से मुझे क्रोध चढ़ रहा था। (शावेल से) शावेल ! अरे ! तुम उदास क्यों हो ?

शावेल—(गम्भीर मुद्रा से) अपमानित हुआ है ! आज सम्राट का सेनापति अपमानित हुआ है।

हेरो०—किससे ? बोलो ! किसका सर्वनाश चाहते हो। यहूदियों में ऐसा कौन है जो हेरोद के दाहिने हाथ का अपमान कर सकता है ? बोलो !

शावेल—(क्रोध से परन्तु धीरे से) राजपुत्री मेरीना के कृपापात्र स्टिफेन ने आज सैकड़ों, हज़ारों नहीं, लाखों के बीच में मेरा अपमान किया है—मुझे लात से मारा है।

हेरो०—मारा है ? क्यों ?

शावेल—क्योंकि मैं सम्राट की आज्ञा का पालन कर रहा था। ईसा को क्रूस पर चढ़ा रहा था। सम्राट ! मैं अपने पद का त्याग करता हूँ। इस अपमान के बाद मैं आपका सेनापति नहीं रह सकता—क्षमा कीजिये।

हेरो०—नहीं-नहीं तुम पदत्याग क्यों करोगे ? अपमान का बदला लो ! वह मेरीना का कृपापात्र होगा, हेरोद का नहीं। मैं अपने पुत्र को भी ईसा की प्रशंसा करने पर क्षमा-दान नहीं दे सकता। मेरीना की प्रतिष्ठा तो हेरोदिया के साथ ही स्वर्ग चली गयी। तुम शान्त हो ! मैं आज्ञा देता हूँ—कल अपने इच्छानुसार स्टिफेन को दण्ड देना।

दशम दृश्य

स्थान—जंगल। समय सन्ध्या

(चार-पाँच सिपाहियों के बीच में हाथ पैर बँधा स्टिफ़ेन और शावेल)

शावेल—स्टिफ़ेन! इस समय तेरे प्राण मेरे हाथ मे है। बोल! तू कैसे मरना चाहता है। कह तो तुझे कुत्तो से नुचवा दूँ।

स्टिफ़ेन—प्राण हाथ मे होने से क्या होता है—शावेल! मेरी आत्मा तो स्वतन्त्र है। क्या तू या तेरा सम्राट आत्मा का भी कुछ बिगाड़ सकता है? जैसे इच्छा हो तेरी वैसे मेरी हत्या कर। कुत्तो से नुचवाने से क्या पायेगा? नीच! आ, तू ही इस शरीर से दो ग्रास मांस खाकर चार घूँट लहू पी ले। सम्भव है ऐसा करने से तेरी पैशाचिक इच्छा की कुछ पूर्ति हो जाय।

शावेल—निश्चय-निश्चय मैंने ऐसा ही किया होता। अपमान करने वाले का लहू पी लेने मे कोई भी पाप नहीं है। परन्तु, प्रथा नहीं है। (दाँत पीसकर) हाय! यदि प्रथा होती! मैं अवश्य, अवश्य तेरा रक्त पान करता।

स्टिफ़ेन—वाह रे प्रथा के पक्षपाती! अहाहा! कहते लज्जा तो न आती होगी! अधमाधिपते! उस पवित्र आत्मा का अपमान करते समय भी तूने प्रथा का विचार किया था? या नित्य-प्रति

जो अत्याचार का अभिनय होता है उसमें भी कहीं प्रथा की प्रतिष्ठा होती है ? शावेल !

शावेल—चुप रह !

स्टिफेन—ज़रा और ठहरो, फिर तो मै स्वयं चुप हो जाऊँगा। हाँ, बतलाओ तो तुम्हारे भी हृदय है ? शुद्ध-बुद्धि से अन्तर टटोल कर देखो तो, वहाँ पर कहीं हृदय नाम का कोई जानवर भी है ? नः ! असम्भव ! तब तो तुममे और जंगली जानवर मे कुछ भी भेद नहीं ! दो पैरो से चलने से ही तुम मनुष्य थोड़े ही हो जाओगे। मनुष्य होने के लिये चाहिये मनुष्यता और मनुष्यता वहीं पर रहती है जहाँ पर होता है सुन्दर-हृदय, पवित्र-हृदय, दया, क्षमा, करुणा और प्रेम से पुलकित हृदय—शावेल !

शावेल—(क्रोध से) चुप ! सिपाहियो ! तुरन्त तलवार से इसकी गर्दन उड़ा दो।

एक सिपा०—तुरन्त ! (मारने के लिये तलवार तानता है)

शावेल—(रोककर) ठहरो ! जान पड़ता है इतने से मेरी तृप्ति न होगी ! बड़ा क्रोध है ! आग जल रही है !! (दाँत पीस कर) क्या करूँ ? (सोचकर) अच्छा जाओ—दो कुत्ते ले आओ ! और दो आदमी पृथ्वी मे एक गढ़ा खोद कर इसे छाती तक गाड़ दो। इसके बाद कुत्तो को इसके ऊपर छोड़ दो। (आवेग से) नोच डालें—कुत्ते इस पापी को नोच डालें ! जाओ !

एक सिपा०—जो आज्ञा प्रभो ! (गमनोद्यत)

शावेल—लेकिन......उफ़ ! फिर भी सन्तोष न होगा (अर्ध स्वगत) उस भरी जनता मे लात !! (स्टिफ़ेन को घूर कर) मुझे लात ! ठीक है ! इसे इस पेड़ से खूब कस कर बाँध दो ! देखूँ कैसे नही सन्तोष होता है । मैं अपने हाथों से इसकी एक-एक बोटी अलग करूँगा । (सिपाही स्टिफ़ेन को पेड़ से कस देते हैं)

शावेल—(तलवार लेकर स्टिफ़ेन पर टूटता है) स्टिफ़ेन ! अब आरम्भ होता है बदला :—ख़त्म होती है तेरी ज़िन्दगी !

स्टिफ़ेन—(मुस्करा कर) शावेल ! आकर सुन ले मेरे हृदय मे कोई पुकार कर कह रहा है—'शावेल तेरा बाल भी बाँका नहीं कर सकता । डर मत !'—आ, सुन !

शावेल—सुन लूँ ? समय टालता है ! देखूँ अब तेरी रक्षा कौन करता है नीच ! (तलवार चलाना चाहता है)

(मेरीना का प्रवेश)

मेरीना—शावेल ! सावधान ! हाथ न चला !

शावेल—चल हट छोकरी ! अब तेरे वे दिन गये !

मेरीना—मै कहती हूँ—मान जा ! इन पर हाथ न उठा ! तू इनका कुछ भी बिगाड़ नहीं सकेगा ।

शावेल—कुछ भी नहीं बिगाड़ सकूँगा ? अच्छा तो देख !

(झपटता है स्टिफ़ेन पर)

मेरीना—(मुस्करा कर) देख ! देख ! वह आ गये ! हमारे रक्षक—हमारे प्रभु आगये !!

(अन्धकार छा जाता है और ईसा की तेजोमयी मूर्ति दोनों हाथ सामने की ओर उठाये दिखायी पड़ती है)

शावेल—(भयभीत) अरे ! यह—ईसा ? हाँ वही तो ! वही है ! यह यहाँ कैसे आया ? समाधि के बाहर कैसे आया ? प्रेत होकर ! प्रेत—प्रेत ! वह—वह—उसके हाथो मे—क्रूस की कीलो के छिद्र अभी तक बने हुये है ! अभी उस मे का रक्त भी नहीं सूखा है ! ओह ! कैसी तीव्र—अग्निमय दृष्टि है ! (आँखें मूँद लेता है) अरे ! अरे ! अरे ! आँखें बन्द कर लेने पर भी वही ज्योति दीदे को फोड़े डालती है ! बचाओ ! बचाओ !! स्टिफेन—मेरीना... बचा.. ओ ।   (मूर्छित पतित)

एकादश दृश्य

स्थान—प्रासाद। समय—तीसरा पहर

(हेरोद बिचारपूर्ण भाव से टहलता है)

हेरो०—स्वर्गीय-पिता, ईश्वर, परमात्मा—इन शब्दों में अवश्य ही कोई विशेष जादू है। जनता इन नामों से बहुत डरती है। सम्राट, राजा, महाराज—उहुँक! इनमे वह अवसर नहीं है! तब! सम्राट ही ईश्वर क्यो न बन जाय? महाराज ही परमात्मा क्यो न कहलाये? परमात्मा...नहीं है। होता तो इतनी भर्त्सना सुनकर कभी तो सामने आता? या अपने नाम पर मरनेवालो की मदद ही करता? या—यह भी हो सकता है मुझ से डरता हो—यही बात है। वह अवश्य मुझसे डरता है।

(गुप्तचर का प्रवेश)

गु० च०—प्रभो! समाचार बहुत ही बुरे हैं!...

हेरो०—क्या है?

गु० च०—जब से ईसा की मृत्यु हुई है तब से उसके अनुयायियो की संख्या दिन दूनी और रात चौगुनी बढ़ रही है।

हेरो०—क्यों?

गु० च०—प्रभो! इस 'क्यों' का उत्तर देने मे मैं असमर्थ हूँ।

हाँ, जो कुछ देखा-सुना है उसे निवेदन करता हूँ। इस समय ईसा के शिष्य प्रचण्ड आँधी की तरह लोगो की आँखों मे ईसाई-मत की धूल झोंक रहे हैं! देश मे ऐसा कोई भी परिवार न होगा जहाँ पर ईसा की प्रतिष्ठा न हो। किसी का पुत्र ईसाई है तो किसी की पुत्री। किसी का मित्र ईसाई है तो किसी का भाई!

हेरो०—(क्रोध से) यह बात!

गु० च०—इधर लोगों की यह धारणा बड़ी प्रबल हो गयी है कि वह मरा नहीं है। क़ब्र में से जी उठा है। तिस पर आप के सेनापति—

हेरो०—(बात काट कर) क्यो जी, आज कल सेनापति कहाँ हैं?

गु० च०—उनका स्वास्थ्य अच्छा नहीं है प्रभो!

हेरो०—तुम अभी उनसे जाकर कहो—जैसे हो सके वैसे आज मुझसे मिलें—अवश्य!

गु० च०—जो आज्ञा! (सप्रणाम गमन)

हेरो०—होने दो! एक बार मेरा ईश्वरत्व ईसाई जनता पर प्रकट होने दो। देखूँ कोई कैसे ईसा का नाम लेता है? एक एक की धज्जियाँ उड़वा कर छोड़ूँगा—रक्त की नदियाँ बहे तो बहे!

(दास का प्रवेश)

दास०—प्रभो! महा मन्दिर के महन्त जी आप से मिलना चाहते हैं।

हेरो०—उन्हे यहीं लाओ। (दास का प्रस्थान)

हेरो०—अच्छे अवसर पर आये। पहले इन्हीं से अपने को ईश्वर कहलाना चाहिये। (एलाज़र का प्रवेश)

हेरो०—आइये! आइये!! एलाज़र महोदय! कहिये, आज इस समय कैसे चल पड़े?

एला०—सम्राट! एक बड़ी विकट समस्या आ पड़ी है।

हेरो०—कहिये-कहिये—है क्या?

एला०—बड़ी उलझन मे पड़ गया हूँ—प्रभो! बुद्धि कुछ काम नहीं कर रही है...

हेरो०—कुछ कहिये, तो पता भी चले कि आप किस उलझन मे पड़े है।

एला०—मै चार-पॉच दिनो से इस प्रश्न को हल करना चाहता हूँ कि—'पेट बड़ा है या धर्म?'—परन्तु बुद्धि कुछ काम नहीं कर रही है। सम्राट! आप कुछ बतला सकते है?

हेरो०—इसमें बतलाने की बात ही क्या है? धर्म कुछ भी नहीं है। और यदि कुछ है भी तो खाना-पीना और आनन्द करना। ये सारे काम बिना पेट की सहायता के हो नहीं सकते अस्तु—पेट ही बड़ा हुआ!

एला०—(चिन्तित) ना! पेट? अब कुछ-कुछ जान पड़ने लगा है। मैंने पेट की भर पेट उपासना की, पर, रह-रह कर अब कोई कह उठता है—'पेट बहुत ही तुच्छ है। धर्म उससे

कहीं श्रेष्ठ है !'—सम्राट ! धर्म ही सब से बड़ा है। डेविड भी यही कहता था। हाय ! मैने क्यों उसे रुष्ट किया।

हेरो०—आप व्यर्थ की बातें बकते है। मै जो कहता हूँ उसे मानिये, धर्म कुछ भी नहीं है।

एला०—यदि धर्म कुछ भी न होता तो आज ईसा की इतनी बड़ी विजय कैसे होती ? और वह पेट की चिन्ता छोड़ धर्म पर क़ुर्बान कैसे हो जाता ?

हेरो०—चुप रह ! उस नीच का नाम न ले ! वह तो पागल था—मूर्ख था।

एला०—वह पागल था ? तब—तब बुद्धिमान आप लोग होंगे ? परन्तु सम्राट ! यह कैसी बात है कि उस पागल की आप बुद्धिमानो से, उस निर्बल की आप प्रबलो से, उस निर्धन की आप धनिकों से आज अधिक प्रतिष्ठा है !

हेरो०—एलाज़र !

एला०—कुछ नहीं। जान पड़ता है मेरी आँखे कुछ-कुछ खुल रही हैं। पहले डेविड की बातो को मै हँसी में उड़ा देता था। परंतु उस दिन से—हाय ! मैंने भी झूठी गवाही देकर उन्हें प्राण दण्ड दिलाया है ? ओह ! पेट के लिये ! सम्राट !

हेरो०—महन्त ! होश मे आओ ! तुम कहाँ हो ?

एला०—कहाँ हूँ ? नरक मे हूँ और कहाँ हूँ ? आह ! अब साफ़-साफ़ देख रहा हूँ। बतलाऊँ कहाँ हूँ ?—कौन कहता है ?—

'ज़रा डर कर बोलो। सम्राट है रोटी मारी जायगी!'—चुप रहो।—अब एलाज़र देख रहा है। यह—यह सम्राट है?—खूब। तब राक्षस कौन है? यह सम्राट है? तब पिशाच कौन है। योहन, ईसा तथा अनेक अनपराध नर-नारियों को खाकर बैठा हुआ यह—राक्षस से भी कोई बड़ा—भयंकर जीव है। अरे बापरे। बापरे। (विक्षिप्त भाव से द्रुत प्रस्थान)

हेरो०—एलाज़र? नीच!! ठहर!!! मै राक्षस? राक्षस? राक्षस? (शावेल का प्रवेश)

हेरो०—शावेल! तुम इतने दिनो तक कहाँ थे?

शावेल—सम्राट! मेरा स्वास्थ्य अच्छा नहीं था।

हेरो०—स्टिफेन को प्राणदण्ड दे दिया गया?

शावेल—(सिर झुका कर) नहीं प्रभो!

हेरो०—नहीं क्यो?

शावेल—कुछ ठीक उत्तर नहीं दे सकता प्रभो। मेरी तलवार अपने प्रचण्ड क्रोध के साथ कोष के बाहर निकल चुकी थी परन्तु—क्या कहूँ मेरीना ने—

हेरो०—(जल्दी से) मेरीना ने क्या किया? बोलो!

शावेल—प्रभो!—(चुप)

हेरो०—जल्दी बोलो!

शावेल—जादू किया प्रभो! उसने कहा—'मारने के पहले इधर देखो!' मैंने देखा क्या—ईसा का प्रेत!! वह मेरे ऊपर आग

बरसाता हुआ झपटा! सम्राट, वह दृश्य बड़ा ही भयङ्कर था! मैं मूर्च्छित होकर वहीं गिर पड़ा! फिर आँखे खुलने पर अपने को अपने घर पर पाया!! जाँच करने पर ज्ञात हुआ कि मेरीना स्टिफेन को छुड़ा ले गयी!

हेरो०—चुप रह—कायर कहीं का! एक अबला तुझ पर प्रबल पड़ गयी?

शावेल—सम्राट!

हेरो०—जाओ! जहाँ मिले वहाँ पर स्टिफेन और मेरीना दोनो को गिरफ्तार करो और उन पर पत्थर बरसा कर उन्हें मार डालो! दूसरा काम भी है। नगर में घोषित कर दो—कोई भी ईश्वर के नाम पर सम्राट हेरोद को छोड़कर दूसरे की पूजा न करे। कल मेरा दरबार होगा उसमे सब प्रजा जन आयें और मुझे ईश्वर मानकर सिर झुकाये।

शावेल—ऐसा ही होगा।

हेरो०—और भी—ईसा का शिष्य था अनुयायी जो जहाँ मिले फौरन गिरफ़्तार कर लिया जाय! (शावेल गया)

हेरो०—एलाज़र! नीच!! मैं राक्षस? पिशाच हूँ? अच्छा तो देख! देख मेरा महत्व, मेरा प्रताप, मेरा प्रलय देख!

द्वादश दृश्य

स्थान—हेरोद का दरबार। समय—दोपहर

(हेरोद सिंहासनासीन, उसके पास ही शावेल तथा सामने युरोशलीम की जनता बैठी है। वेश्यायें गाती हैं)

गाना

छूम छननन छननन छनननन
चूमत नर-वर प्रभु कर चरनन!
त्रिजग-विदित तेरो प्रताप, श्री,
दिशि दिशि वायु करत यश बरनन!
तेरे डर न जपत सब प्रभु को
तोहि रहित कोऊ हित करन न!

(गाते ही गाते गति से गमन)

हेरो०—(जनता से) मेरी सन्तानो! मैंने आज तुम्हे एक ऐसा सुसमाचार सुनाने के लिये यहाँ बुलाया है जो संसार के इतिहास मे अपूर्व है। तुम उसे एकाग्र चित से सुनो! और उसके अनुसार आचरण करो! इसी में तुम्हारे मंगल का बीज निहित है। देखो! आज से तुम्हारा सम्राट-'ईश्वर' की उपाधि धारण करता है। अब, तुम उसे 'परमपिता' 'परमात्मा' आदि पवित्र शब्दों से याद करना! तुम देखोगे वह तुम्हारे लिये किसी कल्पित

ईश्वर से कहीं अधिक सुखद होगा। तुम मुझे ईश्वर कहो। मैं तुम्हे धन-धान्य से भर दूँगा। तुम मुझे परमात्मा कहो! मै तुम्हारे सब प्रकार के दुख दूर कर दूँगा। बोलो, तुम्हे स्वीकार है?

अधिक लोग—भगवन्! हमे स्वीकार है!

हेरो०—बहुत अच्छा! (शावेल से) सेनापति! यहाँ पर महन्त एलाजर नहीं नजर आ रहे हैं?

शावेल—प्रभो! महन्त ने पद-त्याग कर दिया है। जान पड़ता है वह पागल हो गया है! दिन रात ईसा की वध-भूमि मे घूमा करता है!

हेरो०—मेरी घोषणा तो उसने अवश्य सुनी होगी—फिर क्यों नहीं आया? उसे भी मुझको ईश्वर स्वीकार करना पड़ेगा। उसको शीघ्र बुलवाने का प्रबन्ध करो!

शावेल—जो आज्ञा! (एक सिपाही से) जाओ जी! वध-भूमि से एलाजर को पकड़ लाओ—जल्दी! (सिपाही का भागना)

हेरो०—(प्रजा से) अच्छा तो मेरी सन्तानो! तुम सब घुटने टेक कर मुझसे आशीर्वाद माँगो! कहो।— ऐ हमारे सम्राट! तुम ईश्वर से भी बड़े हो! इसलिए हम तुम्हें प्रणाम करते है। तुम हमारी रक्षा करो!'

दो-चार को छोड़ कर सब—ऐ हमारे सम्राट! तुम ईश्वर से भी बडे हो! इसलिए हम प्रणाम करते हैं। तुम रक्षा करो! आशीर्वाद दो! (घुटने टेकते हैं)

शावेल—(जो उठे नही थे उनसे) तुम लोग भी...!

एक—हम सम्राट को ईश्वर नहीं मानते। हमारा ईश्वर वही है जो महात्मा मूसा का, योहन का, और ईसा का था।

हेरो०—चुप रहो! सेनापति! इन्हे गिरफ्तार कर लो!

दूसरा—स्वागत! इस बंधन का स्वागत है! मेरा नाम पीटर है।

पहला—और मेरा फिलिप!

तीसरा—मुझे लोग एण्ड्रू कहते है। हम सब महात्मा ईसा के शिष्य है।

हेरो०—गिरफ्तार कर लो शावेल! ये भारी क्रान्तिकारी हैं। उसी ढोंगी के अनुयायी है।

(कन्धे पर क्रूस लिये सिपाहियों के साथ एलाज़र का प्रवेश)

एला०—देख! राक्षस! देख! अभी तक उस महात्मा का पवित्र रक्त इसमे लगा हुआ है! अरे! तू बैठा है? उठ! उठ!! घुटने टेक दे! यह परमपिता के पवित्र पुत्र का चिह्न है—इसकी प्रतिष्ठा कर! चेत!

हेरो०—पवित्र चिह्न! हा हा हा हा! पागल कही का! सुन, आज से ईश्वर मै हूँ। युरोशलीम की सम्पूर्ण जनता ने मुझे ईश्वर माना है। तू भी घुटने टेक कर मेरा अभिवादन कर! फेंक इस अपवित्र क्रूस को!

एला०—चुप! चुप!! पृथ्वी रसातल चली जायगी! आकाश

टूट पड़ेगा ! प्रलय हो जायगा !! अब फिर अपने को ईश्वर न कहना !—नहीं तो अनर्थ हो जायगा ।

हेरो०—फेंक इस क्रूस को मूर्ख ! टेक घुटने—ईश्वर मैं हूँ !

एला०—हेरोद ! सावधान ! यह अन्तिम अवसर है। सावधान ! अब अपने को ईश्वर न कहना—परमात्मा का अपमान न करना !

हेरो०—मैं ईश्वर हूँ—ईश्वर ! टेक घुटने !

एला०—नहीं मानेगा—अन्धा ! ले—जा ! कर अपने पापों का प्रायश्चित्त ! वह देख ! आ गया ! तेरा काल आ गया ! वह ऊपर देख !

(एकाएक अन्धकार घनघोर छा जाता है और स्वर्ग से एक प्रकाशमय देवदूत आकर हेरोद की छाती में तलवार भोंक देता है। उसके विलुप्त हो जाने पर ईसा की दिव्य मूर्ति दिखाई देती है)

हेरो०—(मरते-मरते) अरे—अरे ! बड़ा—इतना—कष्ट !—क्षमा—हाय !—ईश्व—र—माफ़ ! (मृत्यु)

शावेल—(आँखें बन्द कर काँपता हुआ) वही ! फिर वही ! यह तो ईसा का प्रेत ! (आँखें खोल कर) अरे...सम्राट्...अरे !...हाय रे ! (मूर्छित होता है)

पीटर—चुप रहो ! सुनो ! प्रभो क्या कहते हैं !

फ़िलिप—कुछ कहते हैं ? कहाँ ? मुझे तो कुछ नहीं सुनायी पड़ता है !

पीटर—सुनो ! ध्यान से सुनो !...वह...अलक्षित हो गये ! फ़िलिप ! तुमने सुना वह क्या कहते थे ?

फ़िलिप—नहीं तो ! वह क्या कह रहे थे ?

पीटर—कह रहे थे—'ईसा का बलिदान परमपिता ने स्वीकार कर लिया है ! अब उसके अनुयायियों को कोई भी भय नहीं है। अब वह तब तक अमर है जब तक पृथ्वी को सूर्य से प्रकाश मिलता है, आकाश में तारिकायें हँसती हैं, समुद्र में लहरें खेलती है ! तुम सब प्रयत्नशील रहो ! एक दिन सारा भू-मण्डल ईसा के पीछे चलेगा !

सब—महात्मा ईसा की जय !

(पटाक्षेप)

बस